मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

३४

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2005

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

३४

सम्पादकः
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२००५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसन्धान ३४

आद्य सम्पादक: **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादक: **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्क: C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७

प्रकाशक: **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद**

प्राप्तिस्थान: (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 80-00

मुद्रक:
क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

श्री लक्ष्मीकल्लोलगणि रचिता वर्द्धमानाक्षरा चतुर्विंशति-जिनस्तुतिः	म. विनयसागर	01
श्रीगुणविजयरचिता जातिविवृतिः ॥	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	23
'भुवनसुन्दरीकथा' की विशिष्ट बातों का संक्षिप्त अवलोकन	विजयशीलचन्द्रसूरि	35
तरङ्गवती कथा तथा पादलिप्तसूरिः जैन के अजैन ?	विजयशीलचन्द्रसूरि	43
विशेषावश्यक भाष्यनुं शुद्धिपत्रक (३)		49
पत्रचर्चा		
षड्भाषाबद्ध चन्द्रप्रभस्तव के कर्त्ता जिनप्रभसूरि हैं।	म. विनयसागर	55
विहगावलोकन-३३	उपा. भुवनचन्द्र	57
टूंक नोंध :		
एक विलक्षण धातुप्रतिमा	शी.	60

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

अनुसन्धानना अर्थात् संशोधन तेमज कृतिसम्पादनना क्षेत्रमां काम करवुं गमतुं होय तेमने माटे, अगाऊ क्यारेय नहोती तेवी, उज्ज्वल तथा मबलख तको, आजे उपलब्ध छे. असंख्य अप्रगट तथा विशिष्ट नानी-मोटी रचनाओ हाथपोथीओमां कोई उद्धारकनी राह जोती विभिन्न भण्डारोमां पडी छे. अगणित मुद्रित ग्रन्थो शुद्धीकरण अने पुनःसम्पादननी प्रतिक्षामां छे. पूर्वे प्रकाशित ग्रन्थोने, ते सुलभ बने एटला माटे, यथावत् पुनः मुद्रित करवानी प्रथा अत्यारे पूरजोशमां प्रवर्ते छे. उपलब्ध विपुल सामग्रीनो सदुपयोग करवानी दरकार के परिश्रम लीधा विना, आरम्भनां पानां तथा नाम तथा तसवीरो वगेरेमां अनुकूल परिवर्तनो मात्र करीने, जेमना तेम ते ग्रन्थोने छपावी नाखवा, एमां घणीवार धननो वेडफाट तथा नाम कमाई लेवानी वृत्ति ज मुख्यत्वे अनुभवाय छे. आमां एक प्रकारनो प्रज्ञापराध पण छे.

आवी मनःस्थिति मटे, अने सुयोजित-सुग्रथित पद्धतिथी शोध-सम्पादननी प्रवृत्ति फूलेफाले तेवी भावना.

शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री लक्ष्मीकल्लोलगणि रचिता

वर्द्धमानाक्षरा चतुर्विंशति-जिनस्तुतिः

म. विनयसागर

भारतीय साहित्य की अनेक विशेषताओं में एक प्रमुख विशेषता उसका विशाल स्तोत्र साहित्य भी है । स्तोत्र साहित्य भारतीय साहित्य का हृदय कहा जा सकता है । सभी जातियों ने स्तोत्र रचना में अपना बहुमूल्य योग दिया है । बौद्धों ने बुद्ध भगवान् की, जैनों ने अर्हत् की, वैष्णवों ने विष्णु व उनके अनेक रूपों की, शैवों ने शिव की, शाक्तों ने भगवती दुर्गा की और अन्य लोगों ने अपने इष्टदेवों की स्तुति मधुरतम गीयमान स्तोत्रों द्वारा की है, आत्म-निवेदन किया है, श्रद्धा के प्रसून अर्पित किये हैं ।

स्तोत्र द्वारा भक्त-हृदय स्वच्छन्दतापूर्वक अपने भावों को इष्टदेव के सम्मुख प्रस्तुत करता है । हृदय का आवरणरहित स्वरूप उसमें देखा जा सकता है । निरावृत्त व मुक्त-हृदय का आत्म-निवेदन ऐसी भाषा में अभिव्यक्त होता है, जिसे भाषा न जाननेवाला भी किसी-न-किसी तरह समझ लेता है । स्तोता की भाषा विशुद्ध मानव-हृदय की भाषा होती है जिस पर बुद्धि व तज्जन्य प्रपंचों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । स्तोता की मधुर अनुभूतियों को स्वतः ही मधुरतम शब्द मिल जाते हैं जिसके लिए रचना-कौशल की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी अनुभूति की सघनता की। पावस-ऋतु में जैसे जीवनदायक मेघों की फुहार पड़ते ही बीजों में अंकुर उत्पन्न होने लगते हैं, उसी तरह सघन-अनुभूतियाँ मधुरतम शब्दों में मूर्त्त होने लगती है । इस कार्य में किसी तरह के प्रयत्नों का कोई हाथ नहीं होता ।

जैन मनीषि-पुंगवों ने भगवत्-स्तवना करने में दो विधाएँ अपनाई हैं - १. स्तोत्र, २. स्तुति ।

१. **स्तोत्र** - किसी तीर्थंकर विशेष की या समन्वित समस्त तीर्थंकरों की या किसी तीर्थस्थित तीर्थंकर विशेष की स्तवना करते हुए जो हृदय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के उद्गार प्रकट होते हैं, वे स्तोत्र कहलाते है । इन स्तोत्रों के माध्यम से अनेकान्त स्याद्वाद की प्ररूपणा, भगवान् की देशना अथवा दार्शनिक विवेचन का स्वरूप चिन्तन भी होता है । भगवत् गुणों का वर्णन करते हुए अष्ट महाप्रातिहार्य, ३४ अतिशय, ३५ वाणी इत्यादि का भी समावेश किया जाता है । भगवान के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करते हुए अपनी लघुता भी प्रदर्शित की जाती है और स्वकृत पापों की आत्मगर्हा भी ।

२. **स्तुति** - स्तुति यह केवल ४ पद्यों की होती है । प्रथम पद्य में किसी तीर्थंकर विशेष की या सामान्य जिन की, दूसरे पद्य में समस्त तीर्थंकरों की, तीसरे पद्य में भगवत् प्ररूपित द्वादशांगी आगम की और चतुर्थ पद्य में तीर्थंकर विशेष, के शासन देवता की । इन लक्षणों पर आधारित कई सामान्य स्तुतियाँ भी प्राप्त होती हैं और कई विशिष्ट स्तुतियाँ भी । जिसमें यमक और श्लेषालंकार आदि का छन्दवैविध्य के साथ उक्तिवैचित्र्य का समावेश होता है, वे विशेष कहलाती है । आचार्य बप्पभट्टिसूरि और शोभनमुनि आदि का स्तुति साहित्य विशिष्ट कोटि में ही आता है । श्रीभुवनहिताचार्य आदि रचित स्तुतियों में छन्दवैविध्य पाया जाता है । बढ़ते हुए अक्षरों के साथ छन्दों में रचना करना वैदुष्य का सूचक है ही । श्री लक्ष्मीकल्लोलगणि रचित चतुर्विंशतिस्तुति भी इसी विधा की रचना है ।

लक्ष्मीकल्लोलगणि - स्तुतिकार ने प्रान्त पुष्पिका में "उ. श्री हर्षकल्लोलप्रसादात्" लिखा है । अतः इससे एवं अन्य प्रमाणों से निश्चित है कि ये श्री हर्षकल्लोलगणि के शिष्य थे । आचार्य सोमदेवसूरि की परम्परा से कमल-कलश और निगम-मत निकले थे ।[१] सोमदेवसूरि तपा० सोमसुन्दर-सूरि के शिष्य थे, किन्तु उन्होंने १५२२ के लेख में लक्ष्मीसागरसूरि का शिष्य भी लिखा है ।[२] इनके शिष्य रत्नमण्डनसूरि हुए । रत्नमण्डनसूरि की परम्परा में श्रीआगममण्डनसूरि के प्रशिष्य और श्रीहर्षकल्लोलगणि के शिष्य

१. त्रिपुटी महाराज : जैन परम्परानो इतिहास - भाग ३, पृ. ५६०
२. त्रिपुटी महाराज : जैन परम्परानो इतिहास - भाग ३, पृ. ५६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्मीकल्लोगगणि थे । इनके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है । इनका परिचय, जन्म, दीक्षा, पद आदि भी अज्ञात है ।

लक्ष्मीकल्लोलगणि आगम-साहित्य और काव्य-साहित्य शास्त्र के प्रौढ़ विद्वान् थे । आगम ग्रन्थों पर इनकी दो टीकाएँ प्राप्त होती हैं :-

१. आचाराङ्ग सूत्र तत्त्वागमा[३] टीका प्राप्त होती है जिसका रचना सम्वत् १५९६ दिया हुआ है । जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास[४] में टीका के स्थान पर अवचूर्णी लिखा है ।

२. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र 'मुग्धावबोध' टीका[५]- इसमें रचना सम्वत् प्राप्त नहीं है । श्री देसाई[६] के मतानुसार सोमविमलसूरि के विजयराज्य में विक्रम सम्वत् १५९७-१६३७ के मध्य रचना की गई है । इससे इनका साहित्य रचनाकाल १५९० से १६४० तक निर्धारित किया जा सकता है ।

आगम साहित्य पर टीका रचना से यह स्पष्ट है कि आगम साहित्य पर इनका चिन्तन और मनन उच्च कोटि का था ।

इन दोनों टीकाओं के अतिरिक्त स्वतन्त्र कृतियों के रूप में कुछ स्तोत्र भी प्राप्त होते है वे निम्न हैं :-

११९९ जिन स्तव (समस्याष्टक)

१३४२ साधारण जिन स्तवः (समस्याष्टक)

१४४० ऋषभदेव स्तव

१७७२ महावीर स्तोत्र (सावचूरि)

५०८९ समस्याष्टक

६२३२ साधारण जिन स्तव (पराग शब्द के १०८ अर्थ)

---

३. जिनरत्नकोश : पृष्ठ २४, इसके अनुसार इसकी प्रति A descriptive Catalogue of the Mss. in the B.B.R.A.S. Vol. No. 1397

4. पृष्ठ ५२०, पैरा नं. ७६१

५. जिनरत्नकोश : पृष्ठ १४७, इसके अनुसार इसकी प्रति A descriptive Catalogue of the Mss. in the B.B.R.A.S. Vol. No. 1473

6. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ५२०, पैरा नं. ७६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये सारे क्रमांक कैटलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैनुस्क्रिप्ट मुनिराज श्री पुण्यविजयजी संग्रह भाग-१, २ लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद के दिए गये हैं ।

चमत्कृति प्रधान इन स्तोत्रों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि श्री लक्ष्मीकल्लोलोपाध्याय साहित्य और लक्षणशास्त्र के भी उद्भट विद्वान थे।

इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र कृति के रूप में 'वर्द्धमानाक्षरा चतुर्विंशति जिनस्तुति' प्राप्त होती है । इसमें २४ तीर्थंकरो की स्तुति के साथ अन्तिम गौतम गणधर की भी स्तुति प्राप्त है । एकाक्षर से प्रारम्भ कर २५ अक्षरों तक के विभिन्न छन्दों में प्रत्येक की स्तुति की है जो कि इसके परिशिष्ट में दिये गये छन्दसूचि से स्पष्ट है । छन्द-शास्त्र के ये अजोड़ विद्वान् थे। इन छन्दों में कई छन्द ऐसे हैं जो कि प्रायः प्रयोग में नहीं आते हैं । प्रान्त पुष्पिका में 'अनुप्रासालङ्कारमय्यश्च' अर्थात् प्रत्येक स्तुति में अनुप्रासालङ्कार का विशेष रूप से प्रयोग किया है । प्रत्येक स्तुति का अवलोकन किया जाए तो प्रत्येक श्लोक के पहले और दूसरे चरण में, तीसरे और चौथे चरण में एकाक्षर या द्व्यक्षर में अनुप्रास का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है । उदाहरण के रूप में देखिए - विमलनाथ की स्तुति प्रथम पद्य, प्रथम चरण 'नमामः' और दूसरे चरण में रमामः 'मामः' का प्रयोग है । इसी स्तुति में दूसरे श्लोक के तीसरे-चौथे श्लोक में 'वन्तां' का प्रयोग है । इस प्रकार प्रत्येक पद्य के समग्र चरणों का अवलोकन करें तो अन्त्यानुप्रास की छटा सर्वत्र दृष्टिगोचर होगी । कवि का अभीष्ट भी अनुप्रासालङ्कार प्रतीत होता है । श्लेष, उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकार भी स्थान-स्थान पर मुक्ताओं की तरह गुंथे हुए नजर आते हैं ।

इस कृति की प्रतियाँ भी अत्यन्त दुर्लभ हैं । विक्रम सम्वत् २००१ में श्रद्धेय गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी महाराज ने जामनगर में रहते हुए इसकी पाण्डुलिपि तैयार की थी । उनकी कृपा थी कि स्वलिखित प्रति मुझे भिजवा दी, वही आज प्रकाशित की जा रही है । गणिवर्य लिखित पाण्डुलिपि में किस भण्डार की प्रति से उन्होंने इसकी प्रतिलिपि की है, इसका संकेत न होने की वजह से यह कहने में असमर्थता है कि यह किस भण्डार की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रति है ?

इन स्तुतियों प्रातः एवं सायं प्रतिक्रमण में इसका उपयोग किया जा सकता है । पाठको के रसास्वादन के लिए प्रस्तुति कृति प्रस्तुत है :-

श्री लक्ष्मीकल्लोलगणि रचिता

वर्द्धमानाक्षरा चतुर्विंशति-जिनस्तुतिः

[पण्डित श्री ५ श्रीलक्ष्मीकल्लोलगणि-चरणकमलेभ्यो नमः]

१ - श्रीऋषभजिनस्तुतिः,
(श्रीछन्दसा)[1]

मेऽघं । स्याऽर्हन् ॥१॥
नोऽजाः[१] । स्युर्यैः[२] ॥२॥
नोऽकं । नव्यम् ॥३॥
गीः शं । वोऽव्यात्[३] ॥४॥

★

२ - श्रीअजितजिनस्तुतिः
(स्त्रीछन्दसा)[2]

अन्यः[४], सार्वः ।
सिद्धिं, दद्यात् ॥१॥
सार्वाः, सर्वे ।
सातं, दद्युः ॥२॥
सार्वा, वाचः ।
नः शं, कुर्युः ॥३॥
वाणी, देवी ।
लक्ष्म्यै, भूयात् ॥४॥

★

१. जिनाः । २. लक्ष्म्यै । ३. क्रियात् । ४. अजितः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ - श्रीशम्भवजिनस्तुतिः
(नारीछन्दसा)[3]

तीर्थेशस्तार्तीयः ।
वृद्धिं वः, प्रादुष्येत्[५] ॥१॥
येऽर्हन्तस्ते पापं ।
भक्तानां, छिन्द्यासुः ॥२॥
सार्वीयः, सिद्धान्तः ।
मच्चित्तं, पोपूयात्[६] ॥३॥
सुत्रास्यः, साधूनां ।
विघ्नौघं, लोलूयात्[७] ॥४॥

★

४ - श्रीअभिनन्दनजिनस्तुतिः
(सुमतिच्छन्दसा)[4]

प्लवगाङ्कं, गलिताङ्कम् ।
हतजालं, भजतालम् ॥१॥
जिनवृन्दं, कृतभन्द(द्र?)म् ।
कनकाच्छं, ददताच्छम् ॥२॥
जिनवाक्यं, जितशाक्यम् ।
भज भव्यं, मुनिनव्यम् ॥३॥
श्रुतदेवी, पदसेवी ।
अघहर्त्री, सुखकर्त्री ॥४॥

★

५ - श्रीसुमतिजिनस्तुतिः
(अभिमुखीछन्दसा)[5]

सुमतिजिनं, गतवृजिनम् ।
श्रय मुनिपं, चिदवनिपम्[८] ॥१॥

---

५. प्रकटीकरोतु । ६. पुनातु । ७. लुनातु । ८. ज्ञानप्रभुम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिननिकरं, जनसुकरम् ।
कृतविभवं, भज विभवम् ॥२॥
जिनवचनं, वररचनम् ।
शिवसुखदं, नयतु पदम् ॥३॥
अमलतरा, कमलकरा ।
वितरतु कं, कजजतुकम् ॥४॥

★

६ - श्रीपद्मप्रभजिनस्तुतिः

(रमणाछन्दसा)[6]

धरभूपभवं, वररूपरवम् ।
कृतकामजयं, श्रथधाममयम् ॥१॥
जिनराजगणं, नतभूरमणम् ।
शमताशरणं, कुरुताच्छरणम् ॥२॥
भगवत्समयः, शमशूकमयः ।
भवतान्तिहरः, शिवशान्तिकरः ॥३॥
सुमतः कुसुमः, सुरसालसमः ।
जनतेहितशं, तनुतादनिशम् ॥४॥

★

७ - श्रीसुपार्श्वजिनस्तुतिः

(मधुनामाछन्दः)[7]

कनकसमधनः, करतु शमधनः ।
नतनरसुमनाः, शिवममलमनाः ॥१॥
सकलजिनपतीन्, विमलनरपतीन् ।
भजत मुनिजना ! विगलितवृजिनाः ॥२॥
गणधरगदितं, यतिततिविदितम् ।
शमरससहितं, कुरु हृदि सहितम् ॥३॥
जयति भगवती, विमलगुणवती ।
शुचिरुचिमवती, शशिकरसुदती ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८ - श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तुतिः

(प्रमाणिकाछन्दः)[8]

विशालवंशभूषणः, प्रणष्टकर्मदूषणः ।
ममाष्टमो जिनेशिता, तनोतु तां जगत्पिता ॥१॥
जिना दिशन्तु मे समे, समग्रसौख्यसङ्गमे ।
शिवालये पदं विभा-भरेण सूर्यसन्निभाः ॥२॥
जिनोक्तमागमं सदा, कुरुध्वमानने मुदा ।
भवार्णवौघतारकं, विनोदवृन्दकारकम् ॥३॥
जिनेन्द्रपादपावितः, प्रभूतभक्तिभाव(वि)तः ।
ददातु यक्षनायकः, समाङ्करस्मसायकः ॥४॥

★

९ - श्रीसुविधिनाथस्तुतिः

(भद्रिकाछन्दसा)[9]

आनुवे सुविधिनायकं, भव्यजन्तुभवतायकम् ।
कर्म्मशत्रुभटभञ्जनं, साधुलोककृतरञ्जनम् ॥१॥
शं दिशन्तु सुजिनेश्वराः, सर्वजन्तुषु कृपापराः ।
सिद्धिसाधुरमणीवराः, पादनम्रजनशङ्कराः ॥२॥
श्रीजिनागममहर्निशं, संश्रयेऽहमतिसद्वशम्[९] ।
क्षीरनीरनिधिसन्निभं, सूक्तिशूक्तिरिव निर्निभम् ॥३॥
यो जिनः, कुमतितान्तिदः, साध्यराड् भवतु शान्तिदः ।
जैनशासनविभासनः, प्राणिनां कृतसुवासनः ॥४॥

★

१० - श्रीशीतलजिनस्तुतिः

(---छन्दसा)[10]

वन्देऽहं श्रीशीतलजनुषं, श्रीवत्साङ्कं काञ्चनवपुषम् ।
नन्दाजातं श्रीपतिविनतं, मुक्तिप्राप्तं सुन्दरवितम् ॥१॥

---

९. अतिसन्तः-अत्युत्तमाः, तेषां वशे यस्या(योऽ)सावतिसद्वशस्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वे सर्वज्ञाः कुशलकराः, नानावर्णाकारवरतराः ।
संसाराब्धौ मग्नजनधराः, देयासुः शं मुक्तिपदवराः ॥२॥
श्रीसिद्धान्तो मे कुशलकरः, श्रीसर्वज्ञोक्तो दुरितहरः ।
जीयात्संसाराब्धिघटभवः, शश्वद्भक्तानां कृतविभवः ॥३॥
साऽशोकादेवी मम सुखदा, तेजःपुञ्जोद्दीप्ततररदा ।
अर्हद्भक्त्युत्थप्रबलमदा, भूयाद्भव्याङ्गिप्रहतमदा ॥४॥

★

११ - श्रीश्रेयांसजिनस्तुतिः

(---छन्दसा)[11]

सकलसिद्धिविधानविदग्धं, दशमतोऽग्रिममीशममुग्धम् ।
अमितकामितदानसुरद्रुं, श्रयत शोषितलोभमितद्रुम्[10] ॥१॥
जिनवराः प्रदिशन्तु सतां शं, न लभते मरमर्द्विशतां शम् ।
हरिहराद्यपरः सुरसार्थः, प्रभुतया धृतयाऽपि कृतार्थः ॥२॥
जिनपतेर्वचनं भविकानां, भवतु[11] लब्धमहाभविकानाम् ।
दुरितसन्ततिसंहरणाय, प्रबलसंसृतिसंहरणाय ॥३॥
अखिलमङ्गलमूलविधात्री, गुरुतरोच्चलचिन्तितदात्री ।
विकटसङ्कटवल्लिकृपाणी, जिनमते जयताद्भुवि वाणी ॥४॥

★

१२ - श्रीवासुपूज्यजिनस्तुतिः

(तामरसच्छन्दः)[12]

नमत सुरासुरसेवितपादं, वदनविभाजितशीतलपादम् ।
महिषधरं गतखेदविषादं, जलधरगर्जिगभीरनिनादम् ॥१॥
सकलजिनेशगणं विनुवेऽहं, हृतकनकद्युतिसत्तमदेहम् ।
चरणमाहृदि सुन्दरहारं, पदयुगलप्रणते हितकारम् ॥२॥
जिनवनवाग्विभवो मम सातं, दिशतु महोदयपत्तनजातम् ।
नयगमभङ्गभरप्रतिपूर्णः, कठिनपुराणतमस्कृतचूर्णः ॥३॥

---

१०. समुद्रम् । ११. प्राप्तमहन्मङ्गलानाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनपतिपादपयोरुहभक्तः, श्रितजिनशासनभासनमरक्तः ।
करतु कुमारसुरः शिवमिष्टं, न भवति यत्र कदाचन कष्टम् ॥४॥

★

१३ - श्रीविमलनाथस्तुतिः

(प्रहर्षणी छन्दः)[13]

देवेन्द्रप्रणतपदं जिनं नमामः,
चित्तं तच्चरणयुगे वयं रमामः ।
क्रोडाङ्कं निखिलसमीहितार्थकारं,
नैर्मल्यं सृजतु कृतामरोपहारम् ॥१॥
सर्वज्ञाः सकलगुणाभिरामदेहा,
आदित्यद्युतिभरदीप्तधामगेहाः ।
मुक्तिश्रीरमणकलाभिलाषवन्तः,
कुर्युः शं हृदयभवं शिवं ब्रुवन्तः ॥२॥
सिद्धान्तो जिनवदना[व]तीर्यमाणः,
साध्वोघैः श्रवणपुटावधार्यमाणः ।
भव्यानां शिवसदनाभिलाषुकानां,
श्रेयोऽर्थं भवतु भयक्षयोत्सुकानाम् ॥३॥
विघ्नौघं जिनपदसेवके हरन्ती,
सर्वाधिप्रशमसुखं जने करन्ती ।
सा भूयान्मम सुखमङ्गलादिकर्त्री,
सर्वापत्प्रधनभयामयादिहर्त्री ॥४॥

★

१४ - श्रीअनन्तजिनस्तुतिः

(लक्ष्मीछन्दः)[14]

तं वन्दे सर्वभावज्ञानतत्त्वोपदेशं,
दुष्कर्मध्वान्तनाशादित्यतेजोनिवेशम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसाराम्भोधिमज्जज्जन्तुपोतायमानं,
श्येनाङ्कं पङ्कपूरोद्भासमेघायमानम् ॥१॥
सर्वज्ञा विज्ञवित्ता वासमासं दधाना,
भूयासुर्भूरिभूरिप्राज्यराज्यप्रताना: ।
सम्पत्प्राप्त्यै वरेण्यागण्यपुण्यप्रतीता,
मदनमायाऽभिमानक्रोधलोभव्यतीता: ॥२॥
सिद्धान्त: स्ताच्छिवाध्वप्रासिहेतुर्जनानां,
नानाभङ्गैर्गभीरार्थप्रकाशो घनानाम् ।
पाप्महच्छेदकर्त्ता शासनाम्भोजभानु-
र्भूयिष्ठोत्पत्तिबद्धाऽदृष्टकक्षे कृशानु:[१२] ॥३॥
पाताल: सेवकानां शुद्धधीसंश्रितानां,
सेवाहेवावशेन प्राप्तसर्वेप्सितानाम् ।
कुर्याद्धुर्या महार्या सम्पदं स्फीतभीति:,
कामप्रोद्दामधामा भग्नविघ्नौघभीति: ॥४॥

★

१५ - श्रीधर्मनाथस्तुति:

(ऋषभच्छन्दसा)[15]

जिनराजमुत्तमगुणाश्रयणीयदेहं
कुलिशाङ्कितक्रममहं महिमैकगेहम् ।
धिषणाऽवधीरितगुरुं प्रणमामि नित्यं,
त्रिदशाधिपक्षितिपतिप्रणताधिपत्यम् ॥१॥
जिनपा दिशन्तु कुशलं शिवसङ्गरङ्गा,
वरकेवलर्द्धिकलिता गलिताङ्गसङ्गा: ।
समतारसार्णवनिमग्नमनोविनोदा:,
सुकृतासिपुष्टजनताजनितप्रमोदा: ॥२॥
जिनवक्त्रतोऽर्थरचनावचनोपदिष्ट:,
सुगणाधिपै: पठितपाठतयाऽतिदिष्ट: ।

१२. प्रचुरजन्मसञ्चितकर्मवनेऽग्निधर्म: ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुरितं जहाति परिशीलित एव भव्यैः,
प्रतिषेवणीय इति वाक्यचयस्स नव्यैः ॥३॥
जिनसेवके विपुलमङ्गलमादधानः,
सुरकिन्नरः सकलसाध्यगणप्रधानः ।
दह(द?)तां धनानि जनताकृतकामितानि,
सततं परोपकरणप्रवणस्ततानि ॥४॥

★

१६ - श्रीशान्तिनाथस्तुतिः

(पञ्चचामरच्छन्दसा)[16]

स शान्तिनाथनायकस्तमोभरक्षयङ्करः,
करोतु कर्मसञ्चयप्रमोषणेप्रियङ्करः[13] ।
अनन्तसातदायकः शिवाभिलाषसम्भवं,
सुखं विषादवर्जितं समग्रसौख्यतो नवम् ॥१॥
दिशन्तु मां जिना (रमां)विशालवंशसम्भवाः,
प्रमत्तदत्तदेशना भवार्णवौघविद्रवाः ।
अनीतिभीतिघातका गुणावलीविभूषिता,
महोदयास्पदस्थिताः कुसङ्गभङ्गचदूषिताः ॥२॥
जिनागमं श्रयाम्यहं शठावबोधदुस्तरं,
प्रभूतभग्नसंशयप्रकाशितार्थविस्तरम् ।
अनेकभङ्गसङ्कुलं भवभ्रमव्यथाऽपहं,
मुमुक्षुसङ्घसेवितं गतक्रुधं गुणावहम् ॥३॥
जिनेन्द्रपादपङ्कजोपजीवनाऽलिलालसः[14],
सुशीलसाधुयातनाविधानकेलिसालसः ।
सुसम्पदं ददातु नो महीतलावभासिनीं,
स ब्रह्मशान्तिसेवकः प्रशस्यचारुहासिनीम् ॥४॥

★

---

१३. कर्मसमूहविनाशनेऽभीष्टः । १४. श्रद्धा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७ - श्रीकुन्थुनाथस्तुतिः
(हरिणीछन्दः)[17]

जिनपदयुगं वन्दे मोहद्रुमप्रमयेप्रधिं,[१५]
निरवधिगुणग्रामारामाद्रिजातटसन्निधिम् ।
शिवपुरपथप्रस्थानाश्वं व्यपोहितदुर्मतिं,
प्रथिमशमथश्रीमत्कुन्थोः प्रसारितसन्मतिम् ॥१॥
जिनपरिवृढा गाढं गूढाध्वतः कलुषव्रजा-
ऽपहतिचतुरा गोत्रोन्नत्यप्रथा प्रथनध्वजाः ।
मम विदधतां चेतःस्वास्थ्यं कषायहतात्मनः,
शिवपदसुखे तेजःपुञ्जात्मका विवशात्मनः ॥२॥
गणधरवरैर्यन्निष्पाद्यं तमोत्तरभास्करं,
विगलितमदद्वेषोन्मादव्यलीककलाबलम् ।
भजत भविनो जैनं वाक्यं मरुत्तरुसत्फलम् ॥३॥*
प्रवचनसुरः श्रीगन्धर्वस्तनोतु तनूमतां,
नयनकुमुदानन्दी माद्यद्विवेकवचोवताम् ।
अतुलकुशलश्रेणी सम्यग्दृशामुपकारकः,
पिशुनरसनादृग्दोषोत्थव्यथाऽर्णवतारकः ॥४॥

★

१८ - श्रीअरनाथस्तुतिः
(हरिणीछन्दः[18])

भगवदरनाथं नौमीशं देवराजनतक्रमं,
विदुरनिकराराध्यं देवं निष्ठिताघभरभ्रमम् ।
दुरितदहनस्वाहाकान्तं श्लेशलेशविनाशकं,
विमलचरणज्ञानाधारं शुद्धपन्थप्रकाशकम् ॥१॥
जिनपतिगणास्ते भूयासुः श्रेयसां ततिकारका,
अवितथपथाख्यानप्रष्ठाः सारलक्षणधारकाः ।

---

१५. शस्त्रधारम् । *एक चरण तूटेल छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवसरणाद्योतन्नत्यश्रीदेवताव्रजसंस्तुताः,
परमपदवीं सम्प्राप्ता ये माननीयजनाश्रिताः ॥२॥
वचनरचनासंश्लिष्टाशं ग्रामरामरागपवित्रितं,
प्रणमत मनोऽभीष्टार्थार्त्तिं भूरिपाठविचित्रितम् ।
शमरससुधावाक्यं पूर्णं जीतनीतिनिरूपकं,
गणभृदुहि(दि?)तं श्रीसिद्धान्तं ध्वान्तवैरिसरूपकम् ॥३॥
जिनपतिपादाम्भोजे भक्ता धारिणी तनुताच्छ्वं,
जिनमतजनासीष्टानादरासुकृतावहम् ।
सरलमनसां दत्ताधारा व्याधिरोधनकारिका,
कलिमलभरभ्रान्तस्वान्तप्रान्तलोकनिकारिका ॥४॥

★

१९ - श्रीमल्लिनाथस्तुतिः
(मेघविस्फूर्जिताछन्दः)[19]

जिनेन्द्रं निस्तन्द्रं दुरि[त]तिमिरापायनाशाब्जहस्तं,
घटाङ्कं श्रीमल्लिं भवजलधिवातापिवैरिप्रशस्तम् ।
वहामश्चैनोऽन्तर्विशदतरभावेन हावेन मुक्तं,
पवित्रां चारित्रश्रियमनुभवन्तं परानन्दयुक्तम् ॥१॥
जिनेन्द्राः कुर्युस्ते सपदि भवनिस्तारमारप्रहीणाः,
सुरेन्द्राद्यैर्वन्द्याः प्रचुरतरचित्तेजसोऽतिप्रवीणाः ।
महानन्दप्रोद्यत्परमसुखसम्प्राप्तपुण्यप्रकर्षा,
दरिद्रोद्यन्मुद्राविघटनघनाघातजातानुतर्षाः ॥२॥
जिनेन्द्रास्योद्भूतं भवतु भवभीतिप्रतीघातनाय,
पुनः स्पष्टो दृष्टोत्कटचरटसङ्घातसंशातनाय ।
अनेकार्थाकीर्णं गमशमरमालीढमाधारभूतं,
जनानां सिद्धिश्रीकमलमपयादूतिसङ्केतदूतम् ॥३॥
जिनेन्द्रोपास्तौ या चतुरतरधीवैभवव्यासमत्ता,
मुनिश्राद्धव्याधिप्रमयसमयस्थापितैकाग्रचित्ता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदध्यात्सङ्घस्यातुलकुश[ल]सन्दोहमूर्जस्वला सा,
[१६]प्रभाविद्युत्तारा धरणदयिता हस्तिविङ्ख्याविलासा ॥४॥

★

२० – श्रीमुनिसुव्रतस्वामिस्तुतिः
(शोभाछन्दः)[20]

जिनाधीशं वन्दे कुशलनिपुणधारीगम्यरम्यस्वरूपं,
नमन्नाकिश्रेणीमुकुटपतितमालासुपूज्यं सुरूपम् ।
सुरेन्द्रैस्संस्तुत्यं चरणकमलं लक्ष्माणमुन्निद्रनेत्रं,
भवाम्भोधौ मज्जज्[१७]जननिकरतरी तुल्यमेनोऽरिजेत्रम् ॥१॥

क्रियासुस्ते सार्वाः परमपदपुरप्राप्तये प्राज्यवीर्यं,
जगद्दुर्जेयश्रीतनयमदविनाशाप्तशौर्याः सधीर्यम् ।
प्रमाणोपेतश्रीसमवसरणभूसंस्थिताः स्वान्तशान्ता,
निराधाराधाराः शिशुतरुणजराजीर्णभावेऽपि कान्ताः ॥२॥

कृतान्तः सार्वीयः सुरतरुसदृशश्चिन्तितार्थप्रदाता,
मनोवृत्तेर्भक्त्या परमशुचितयाऽऽराधितः शंघिधाता ।
ददातु प्रज्ञां मां गलितकलिमलांशूकसत्कृत्यतूर्णां,
महारेकोद्रेकच्छिदुरविदुरतातत्परः पुण्यपूर्णाम् ॥३॥

जगत्स्वामिध्यानाचरणसततधीः सज्जनानां श्रिये स्ता-
दतिज्योतिःशाली वरुण इति सुरो यः सुराणां पुरस्तात् ।
अभद्राणां श्रेणीलवनजवने वैज्ञानिकत्वं दधानः,
सदानन्दी दीनार्त्तिहरणचतुरः स्मेरकीर्त्तिप्रतानः ॥४॥

★

१६. प्रभोद्यज्ज्ञात्कारा इति वा पाठः ।
१७. नवहनसमं पातकामित्रजैत्रम् इति पाठान्तरम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१ - श्रीनमिनाथस्तुतिः

(चन्दनप्रकृतिच्छन्दः)[21]

जिनेशपावकध्यानाऽत्यमलतरमतिरभिनवगुताः,
सदा नमे ! पदाम्भोजं तव शमविदलितकलुषकणः ।
भजामि विश्ववात्सल्यं चरमपरमपदसुखकरणं,
भवाब्धिमग्नभव्यौघप्रवहणसदृशविहितशरणम् ॥१॥
दिशन्तु मां जिनाः सौख्यं कलिमलदलगलितकलं,
व्यथाप्रथापथातीतामदमदनखलविदलितथलम् ।
समस्तवासवार्चाऽर्हाः शमसंयमनियमपरिकलिताः,
प्रभूतलक्ष्मणाकीर्णाश्चलननलिननतजनफलिताः ॥२॥
जिनोदितं ममेष्टार्थं वितरतु यमशमगमललितं,
प्रकामभाग्यसंस्कारप्रकटितशुभफलमुनिमिलितम् ।
विचारसारसम्भारप्रथनकथितसुकृतकलफलं,
समग्रभावसूचाया अतिविदितविषज्ञधरणितलम् ॥३॥
सशासनोन्नतिप्रह्वो भृकुटिरिति विबुधजनविदितं,
नमेर्भुजिष्यतां प्राप्तः सततमिति यतिपतिनिगदितम् ।
करोतु तन्ममाधानं शिवसदनगमनरसिकजने,
वरेण्यलक्षणोपेताभयदपदयुगलविधृतमने ॥४॥

★

२२ - श्रीनेमिनाथस्तुतिः

(महास्रग्धराछन्दः)[22]

जिनपं भावेन वन्दे सुरनरमहितं मान(नि)नीसङ्गशून्यं,
प्रहतक्रोधप्रतापं प्रमुदितमनसं ध्यानचित्तादशून्यम् ।
मथिताजन्यं प्रसन्नं विदलितमदनं शाश्वतश्रीनिदानं,
सुकृताद्वैतप्रपन्नार्त्तिहरणविदुरं शङ्खलक्ष्मप्रधानम् ॥१॥
सकलार्थाः साधिता यैस्त्रिभुवनविनतास्तीर्थपाः सन्तु सिद्धयै,
सततामिप्रायविज्ञाः शमदमनिचिता ज्ञानसन्तानवृद्धयै ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ममतामिथ्यानिरस्ता अमितगुणमणीगन्धमातासमानाः,
समतासीमन्तिनीशाः पदनतजनता प्रत्तरामानिधानाः ॥२॥
गणधारैर्भाषितं यद्गमनयबहुलं लङ्घनीयं न देवै-
र्धिषणावद्भिर्निषेव्यं त्रिभुवनविदितं संस्तुवे पूतहेवैः ।
अविसंवादिप्रमेयं रुचिरतरवचो वर्णनीयं प्रगल्भै-
रमितार्थं व्यर्थहेतुव्यपगमनिपुणं प्रस्फुरद्दिव्यवल्गैः(ल्भैः?) ॥३॥
विदधातु स्वर्निवासी प्रवचनवरिवस्याविधानाभिरूपः,
सबलः सन्तापहर्त्ता विदुरनरचमत्कारकारिस्वरूपः ।
प्रबलारिष्टप्रहर्त्ता जिनमतसततोपासकप्राणभाजां,
कुशलं गोमेधनामा करकृतनकुलाहिः स्फुरत्पुण्यभाजाम् ॥४॥

★

२३ - श्रीपार्श्वनाथस्तुतिः

(वृन्दारकच्छन्दः)[23]

जिनेशमभिनौमि तं दलितमोहमायान्धकारप्रचारं सदा,
दिनेशसममुत्तमं निहतरागरोषादिदोषं युतं सम्पदा ।
सुरेशजनसंस्तुतं नृपतिलोकनम्रीकृतं पार्श्वनाथप्रभुं,
महेशपदवीश्रितं कमठमानवज्जापितं लोकरक्षाविभुम् ॥१॥
समस्तजिनमण्डलं मम पुनातु विश्वत्रयीज्ञातसद्विस्तरं,
कठोरवृजिनोच्चयक्षयकरं समश्वेतकल्याणकुप्रस्तरम् ।
विमुद्रवहनाम्बुजप्रमदकृतसुखं श्रेणीविश्राणनाकोविदं,
विसारिगुणसञ्चयप्रसृतविश्वभावावबोधस्फुरत्संविदम् ॥२॥
जिनेन्द्रवचनामृतं मम लुनातु दुःखावलिं पातकान्तंकजां,
प्रभूतजनिसञ्चितप्रबलदुष्टदोषप्रकर्षां रजस्सङ्गजाम् ॥
भवामयभरागदं चतुरचित्तचातुर्यदानप्रधानो(नौ)जसं,
कृपाशमरसात्मकं कुमतकौशिकव्यूहहंसोल्लसत्तेजसम् ॥३॥
धिनोतु जनमानसं धरणराजनागेन्द्रपत्नी सुपद्मावती,
विचारचतुराञ्चितं परमसुन्दराकारसद्रूपशोभावती ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमोदपरिपूरिता जनितजैनलोकप्रकाण्डोल्लसत्सम्पदा,
मनीषिजनतास्तुता विशदबुद्धिसंसिद्धिसर्वर्द्धिसिद्धिप्रदा ॥४॥

★

२४ - श्रीवर्द्धमानजिनस्तुतिः

(विभ्रमगतिच्छन्दः)[24]

सिद्धार्थान्वयमण्डनं जिनपतिस्त्रैलोक्यचूडामणिर्जितपावकः,
पञ्चास्याङ्कितभूघनो घनगभीरध्वानविस्तारयुगादघातकः ।
संसारार्णवसेतुबन्धसदृशः सिद्धयङ्गनासङ्गमी गतकन्दलः,
जीयाद्यः कमनप्रतापहननस्थाणूपमप्राणभृच्छमशम्बलः ॥१॥
सर्वे सार्वचयाः सुपर्वनिचयाधीशप्रमोदस्तुताहितवाचकाः,
चारित्रावसरापवर्जनकला दारिद्रविद्रावणोद्धतयाचकाः ।
जीयासुः प्रतिकृष्टकर्मनिकरच्छेदोद्यताः पादपूतरसातलाः,
प्रोन्मीलत्कमनीयकान्तिकलितास्तत्त्वार्थविद्भास्करप्रग्रहामलाः ॥२॥
यज्जैनेन्द्रवचः प्रभावभवनं दुर्वादिगर्वापहं जनपावनं,
सेवे शान्तरसामृतोद्भवमहं पुण्याङ्कुरार्णोधरं शुभभावनम् ।
शुद्धाचारनिरूपणव्रतधनस्वर्गापवर्गप्रदं मतिमिश्रितं,
सर्वात्मप्रतिपालनासु ललितं कुन्मानमायाहति व्रतिसंश्रितम् ॥३॥
मातङ्गोऽर्हदुपासकः प्रकुरुतात् श्वःश्रेयसं प्राणिनां सुमनोवराः,
श्रीसङ्घस्य कृपाकरो मुनिमनःश्रेणीसमुल्लासकः सुमनोहरः ।
मातङ्गोपरिसंस्थितो भुजयुगः श्यामः सकर्णावली नुतलक्षणः,
सर्वप्राण्युपकारकारणकलासक्तः सुदृष्टिः सदाऽतिविचक्षणः ॥४॥

★

२५ - श्रीगौतमगणधरस्तुतिः

( )[25]

ज्ञाततनूजाद्यान्तेवासी सकलचरित्रादिगुणनिधानं हितकर्त्ता,
गौतमनामा दीव्यद्धामा विमलयशःकायवसुमतीपीठविहर्त्ता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षयमुख्याः सर्वाः सहल्लब्धय इह पृथ्वीविदिततरायास्तदमत्रं,
मुख्यगणाधीशो धेयान्मां विपदपतन्तमतिपरिपूर्णः सुचरित्राम् ॥१॥
तीर्थकरास्ते भूयासुर्मां परमपदाप्त्यै सुरनरनूताः शमपूताः,
केवलचिद्रूपालोकालोकितभुवना भोगविरतचित्ता भ्रमधूताः ।
पातकजातानेकासातप्रकरकुबाधाव्यथितजनानां रतिकाराः,
सुरतपूर्त्या नेत्रानन्दप्रथनसुधीदीधितिसमयादाः समताराः ॥२॥
आगमवाक्यं साधुश्रेष्ठैर्विदुरजनानामुपकृतिहेतोरुपनीतं,
बादरसूक्ष्मप्राणाजीवप्रमुखविचारव्रजभृतमध्यचरजीतम् ।
ज्ञानदयादानव्याख्यानाद्यनणुगुणालीग्रथितसुशास्त्रं गतदोषं,
कर्णपुटाभ्यां यैरानिन्ये भविकनरास्ते शिवसुखमीयुः कृतजोषम् ॥३॥
शासनदेवा देव्यः सर्वा मुनिनिवहानामचलसुखं ते जिनभक्ता,
ये हतदुष्टव्राताः कुर्युर्यमनियमाचारनयरतानां रसरक्ताः ।
पण्डित**लक्ष्मीकल्लोल**स्पर्शननिपुणा निर्मथितविकारा अतिशिष्टाः,
स्वीकृतसन्धानिर्वाहाः सज्जनपरमानन्दपदनिदानाहितकष्टाः ॥४॥

[अथ स्तुतिकृतो नामनिर्देशकं वृत्तम्-]
एवं श्रीजिनपुङ्गवाः स्तुतिपथं नीताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमद्वीरविनेयगौतमयुताः सद्वर्द्धमानाक्षरैः ।
वृत्तैर्निर्भरभक्तिसम्भृतमनोवृत्त्या मया काम्यया,
मुक्तिस्त्रीपरिरम्भणस्य कमलाकल्लोलमेधाविना ॥१॥
इति श्रीप्रतिस्तुतेर्जिनसङ्ख्याप्रमाणवर्द्धमानाक्षरा अनुप्रासालङ्कारमय्यश्च
श्रीगौतमगणधरस्तुतियुताश्चतुर्विंशत्यर्हतां स्तुतयः पूर्वाचार्यै-
रकृतपूर्वी विनोदमात्रतया मया कृतपूर्वी
उ० श्री ५ श्रीहर्षकल्लोलप्रसादात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पणी :

१. एकाक्षर छन्द का नाम है श्री । इसका लक्षण है - केवल गुरु - ऽ इस छन्द का नाम **श्री** है ।

२. द्व्यक्षर छन्द का नाम है **स्त्री** । - इसका लक्षण है - दो गुरु - ऽऽ इस छन्द का नाम **गंगा** है । अन्य छन्दोग्रन्थों में **अत्युक्तं, नौ, स्त्री, पद्यम्** और **आशी** नाम भी प्राप्त होते है ।

३. त्र्यक्षर छन्द का नाम है **नारी** । इसका लक्षण है - ऽऽऽ इस छन्द के अन्य नाम **मन्दारम्, नारी, श्यामांगी** मिलता है ।

४. चतुरक्षर छन्द का नाम है - **सुमति** । इसका लक्षण है - ।। ऽ, ऽ, सगण, गुरु । यह छन्द अप्रसिद्ध है ।

५. पञ्चाक्षर छन्द का नाम है - **अभिमुखी** । इसका लक्षण है - ।। ।, । ऽ, नगण, लघु, गुरु । यह छन्द भी अप्रसिद्ध है ।

६. षडक्षर छन्द का नाम है - **रमणा** । इसका लक्षण है - ।। ऽ, ।। ऽ, सगण, सगण । इसके अन्य नाम प्राप्त होते हैं - **नलिनी, रमणी, कुमुदं** ।

७. सप्ताक्षर छन्द का नाम है - **मधु** । इसका लक्षण है - ।।।, ।।।, ऽ, नगण, नगण, गुरु । इसके अन्य नाम प्राप्त होते हैं - **मधुमति, हरिविलसित, चपला, द्रुतगति, लटह** ।

८. अष्टाक्षर छन्द का नाम है - **प्रमाणिका** । इसका लक्षण है - ।ऽ।, ऽ।ऽ, ।ऽ, जगण, रगण, लघु, गुरु । इसके अन्य नाम प्राप्त होते हैं - **स्थिरः, मत्तचेष्टितं, बालगर्भिणी** ।

९. नवाक्षर छन्द का नाम है - **भद्रिका** । इसका लक्षण है - ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, रगण, नगण, रगण ।

१०. दशाक्षर छन्द का नाम है - ..... इसका लक्षण है - ऽऽऽ, ऽऽ।, ।।।, ऽ, मगण, तगण, नगण और गुरु । इस छन्द का नाम प्राप्त नहीं है ।

११. एकादशाक्षर छन्द का नाम है - **रोधक** । इसका लक्षण है - ।।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽऽ, नगण, भगण, भगण, यगण । यह छन्द भी अप्रसिद्ध है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. द्वादशाक्षर छन्द का नाम है - **तामरस** । इसका लक्षण है - ।।।, ।ऽ।, ।ऽ।, ।ऽऽ, नगण, जगण, जगण, यगण । इसके अन्य नाम **ललितपदा** और **कमलविलासिणी** प्राप्त होते है ।

१३. त्रयोदशाक्षर छन्द का नाम है - **प्रहर्षिणी** । इसका लक्षण है - ऽऽऽ, ।।।, ।ऽ।, ऽ।ऽ, ऽ, मगण, नगण, जगण, रगण और गुरु । इसका भिन्न नाम - **मयूरपिच्छम्** प्राप्त होता है ।

१४. चतुर्दशाक्षर छन्द का नाम है **लक्ष्मी** है । इस छन्द का नाम लक्षण है - ऽऽऽ, ऽ।ऽ, ऽऽ।, ऽऽ।, ऽऽ, मगण, रगण, तगण, तगण, गुरु, गुरु । इसके अन्य नाम - **चन्द्रशाला, बिम्बालक्ष्यम्** प्राप्त होते है । इस छन्द का प्रयोग भी कम होता है ।

१५. पञ्चदशाक्षर छन्द का नाम है - **ऋषभ** । लक्षण है - ।।ऽ, ।ऽ।, ।।ऽ, ।।ऽ, ।ऽऽ, सगण, जगण, सगण, सगण, यगण, इस छन्द का प्रयोग क्वचित् ही होता है ।

१६. षोडशाक्षर छन्द का नाम है - **पञ्चचामर** । लक्षण है - ।ऽ।, ऽ।ऽ, ।ऽ।, ऽ।ऽ, ।ऽ।, ऽ, जगण, रगण, जगण, रगण, जगण, गुरु ।

१७. सप्तदशाक्षर छन्द का नाम है - **हरिणी** । लक्षण है - ।।।, ।।ऽ, ऽऽऽ, ऽ।ऽ, ।।ऽ, ।ऽ, नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु, गुरु । इसके अन्य नाम **वृषभचरित** और **वृषभललित** ।

१८. अष्टदशाक्षर छन्द का नाम है - **हरिणीपदम्** । लक्षण है - ।।।, ।।ऽ, ऽऽऽ, ऽऽ।, ऽ।।, ऽ।ऽ, नगण, सगण, मगण, तगण, भगण, रगण । इस छन्द का प्रयोग क्वचित् ही देखने में आता है ।

१९. एकोनविंशत्यक्षर छन्द का नाम है - **मेघविस्फूर्जिता** । लक्षण है - ।ऽऽ, ऽऽऽ, ।।।, ।।ऽ, ऽ।, ऽ।, ऽ, यगण, मगण, नगण, सगण, रगण, रगण, गुरु, गुरु ।

२१. एकविंशत्यक्षर छन्द का नाम है - **चन्दन प्रकृति** । लक्षण है - ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽऽ।, ।।।, ।।।, ।।।, ।।ऽ, जगण, रगण, तगण, नगण, नगण, नगण, सगण । इस छन्द का भी क्वचित् ही प्रयोग होता है ।

२२. द्वाविंशत्यक्षर छन्द का नाम है - **महास्रग्धरा** । लक्षण है - ।।ऽ, ऽऽ।,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऽऽ।, ।।।, ।।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ, सगण, तगण, तगण, नगण, सगण, रगण, रगण, गुरु । इसका प्रयोग भी क्वचित् ही होता है ।

२३. त्रयोविंशत्यक्षर छन्द का नाम है - **वृन्दारक** । लक्षण है - ।ऽ।, ।।ऽ, ।ऽ।, ।।ऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽ, जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, यगण, यगण, लघु, गुरु । इस छन्द का भी क्वचित् ही प्रयोग होता है ।

२४. चतुर्विंशत्यक्षर छन्द का नाम है - **विभ्रमगति** । लक्षण है - ऽऽऽ, ।।ऽ, ।ऽ।, ।।ऽ, ऽऽ।, ऽऽ।, ऽ।।, ऽ।ऽ, मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण, भगण, रगण । इसका प्रयोग भी क्वचित् ही होता है ।

२५. पञ्चविंशत्यक्षर छन्द का नाम प्राप्त नहीं होता है । इसका लक्षण है - ऽ।।, ऽऽऽ, ऽऽऽ, ।।।, ।ऽऽ, ।।।, ।।ऽ, ऽ भगण, मगण, मगण, नगण, यगण, नगण, यगण, सगण, गुरु ।

प्रशस्ति पद्य के छन्द का नाम है - **शार्दूलविक्रीडित** । इसका लक्षण है - ऽऽऽ, ।।ऽ, ।ऽ।, ।।ऽ, ऽऽ।, ऽऽ।, ऽ, मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण, गुरु ।

C/o. प्राकृत भारती अकादमी
13-ए, मेन मालवीय नगर
जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीगुणविजयरचिता जातिविवृतिः ॥

भूमिका

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

विक्रमना १४मा शतकमां थई गयेला मनाता, तर्कपण्डित शिवादित्ये वैशेषिकदर्शननुं प्रतिपादन करतो 'सप्तपदार्थी' नामे ग्रन्थ रच्यो छे. तेना उपर १६मा शतकमां थयेला, दाक्षिणात्य पण्डित, माधवसरस्वती नामना विद्वान् यतीन्द्रे 'मितभाषिणी' नामनी टीकानी रचना करेल छे. आ टीकामां 'जाति' तरीके तर्कशास्त्रमां प्रसिद्ध एवा केटलाक धर्मोनां खास लक्षणो आपवामां आव्यां छे, जे अध्येताने समजवामां जराक कठिन पडे तेवां छे. तेवां १८ लक्षणो चुंटी काढीने तेनुं अर्थघटन तथा तेनुं पदकृत्य, आ 'जातिविवृति'मां करवामां आवेल छे. आनी सहायताथी अध्येताने ते कठिन लक्षणो एकदम सुगम थई पडे छे, तेमां शंका नथी.

आजकाल, तर्कशास्त्रना अभ्यासमां प्रवेश करनार विद्यार्थीने जेम अन्नम्भट्टनो 'तर्कसंग्रह' शीखववामां आवे छे, तेम एक काळे आ 'सप्तपदार्थी'नुं अध्ययन करावातुं हशे तेम प्रतीत थाय छे. तेथी ज तेना पर अनेक टीका ओ थई होवानुं जोवा मळे छे, तो ते टीकागत कठिन पदार्थोना आ जातिविवृति जेवां सरलीकरण पण प्राप्त थाय छे.

जातिविवृतिना रचयिता श्रीगुणविजयजी सत्तरमा शतकमां थयेला विद्वान् जैन मुनि छे. १६-१७मा शतकना जगप्रसिद्ध जैन सूरि श्रीहीर-विजयसूरिनी शिष्यपरम्परामां थयेल उपाध्याय श्रीसुमतिविजय गणिना तेओ शिष्य हता. तेमणे आ विवृतिमां बे वार 'प्रशस्त(पाद)भाष्यना सन्दर्भ टांक्या छे ते जोतां, तेओ न्याय-वैशेषिक दर्शनना रसिक अने ऊंडा अभ्यासी होय तेम मानी शकाय. केटलांक स्थानो आमां एवां पण छे, जेमां विवृतिकारे मितभाषिणीकारनी क्षति प्रत्ये अंगुलिनिर्देश कर्यो होय. जेम के - परत्वत्व जातिनुं, अपरत्वत्व जातिनुं, द्रवत्वनुं तथा सितत्वनुं - आ बधां लक्षणोनुं विवरण जुओ.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निजी संग्रहनी सात पत्रनी एक प्रतिना आधारे आ सम्पादन थयुं छे. प्रतिना प्रान्ते पुष्पिका आदि कशुं नथी, अने लखावट १७मा शतकनी तेमज पडिमात्रा-लिपिमां छे, तेथी अनुमान एम थाय छे के आ प्रति कर्ताना स्वहस्ते ज लखाई हशे.

ग्रन्थ समजवामां सुगमता पडे ते खातर, प्रान्ते टिप्पणीरूपे, जे १८ लक्षणोनी आ विवृत्ति छे ते १८ लक्षणो पण मूक्यां छे.

मो.द. देसाईए पोताना ग्रन्थ 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास'मां पृ. ५९० पर (पारा ८६७) एवी नोंध करी छे के "हीरविजयसूरिराज्ये त०सुमतिविजय शि० गुणविजये मितभाषिणी (नामनी) जातिविवृति रची, तेमां कर्ता पोताना विद्यागुरु तरीके सूरचन्द्र जणावे छे." आ नोंधमां आटली स्पष्टता करवी जोईए : "मितभाषिणी नामनी वृत्ति नहि, पण मितभाषिणी वृत्ति उपर विवृति रची."

जातिविवृतिनुं मेटर तैयार थया पछी अचानक मांडवी (कच्छ)ना खरतरगच्छसंघना ज्ञान भण्डारमांथी तेनी एक प्रति छे, तेनी झे. कॉपी मळी आवी. पांच पत्रनी आ प्रति अनुमानतः १८मा शतकनी लागे छे. अशुद्धिओ घणी होवा छतां तेमां केटलाक पाठो वधु सारा जणाया छे. पाठान्तरो तेनां नोंधीने पाछळ आवेल छे. आ नकल आपवा बदल मांडवी खरतरगच्छ जैन संघना कार्यवाहकोनो आभारी छुं.

★

श्रीगुणविजयकृता
जातिविवृतिः ॥

ग्रन्थः

[1]श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीमहावीरमर्हन्तं प्रणिपत्य विधीयते ।
विवृतिर्**मितभाषिण्यां** जातिलक्षणगोचरा ॥१॥[2]

आत्मवृत्त्येत्यादि । आत्मनि वृत्तिर्येषां ते तथा, बुद्ध्यादयो गुणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यर्थः । तेषु नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा तथा । आत्मनि वृत्तिर्यस्य स तथा, स चाऽसावत्यन्ताभावश्च, तस्याऽप्रतियोगिनी, तत्रैव तस्या वर्तमानत्वात् । नहि यद् यत्र वर्तते तत् [३]तदधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगि स्यादिति द्रव्यत्वादन्या सा तादृग् । ततश्च विशेषणानां [४] त्रयस्यापि जात्या सह कर्मधारय इति ।[1]

अथ विशेषणानां अतिव्याप्त्यादिलक्षणदोषविनिवारकत्वेन साफल्यं दर्श्यते । तत्र 'जातिरात्मत्वं' इत्युक्ते द्रव्यत्वेऽतिव्याप्तिः, अत उक्तं **द्रव्यत्वान्ये**ति । तथा च मनस्त्वादावतिव्याप्तिः, अत **आत्मवृत्त्येत्यादि** । एवमपि सत्तायामतिव्याप्तिस्तत **आत्मे**त्याद्युक्तम् । [५]आत्मगुणोप(पा)दाने सत्तादावव्याप्तिस्तत आद्यं, प्रथम-तृतीयविशेषणोपादाने च कर्मत्वादावतिप्रसङ्गस्ततो द्वितीयविशेषणाङ्गीकार इत्यात्मत्वलक्षणम् ॥१॥

गगनेत्यादि । गगने नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा । तथा स्पर्शवत्, तस्याऽत्यन्ताभावस्तस्याऽधिकरणं सर्वदा स्पर्शशून्यमित्यर्थः । तादृशे[६] क्रियावति वृत्तिर्यस्याः सा तथोक्ता । एतच्च वृत्त्यन्तं[७] विशेषणद्वयं जातेरिति तथैव समास इति । तत्र 'जातिर्मनस्त्वं' इत्युक्ते आत्मत्वादावतिव्याप्तिः, अतः **क्रियावद्वृत्ती**ति । तथापि वायुत्वादावतिव्याप्तिः, अतः **स्पर्शवत्त्वे**त्यादि । सत्तादावतिव्याप्तिव्यवच्छेदार्थं **गगनावृत्ती**ति । गगनावृत्ति जातिम(र्म)नस्त्वमित्युक्ते वायुत्वादावतिव्याप्तिस्ततः **स्पर्शवत्त्वे**त्यादि । तथा च कर्मत्वादावतिव्याप्तिरतः **क्रियावदि**ति[८] [२]मनस्त्वलक्षणम् ॥२॥

रसावृत्तीत्यादि । रसे नास्ति वृत्तिरस्याः सा । तथा तैजसं च तदि[न्द्रि]यं च तैजसेन्द्रियं, चक्षुरित्यर्थः । तदेव तन्मात्रम् । तेन ग्राह्यः, स चाऽसौ गुणश्च । तत्र वृत्तिरस्याः सा । तथा तदनु वृत्त्यन्तविशेषणद्वयेन कर्मधारय इति । तत्र जाती रूपत्वमित्युक्ते द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिः, तदपोहार्थं **गुणवृत्ती**ति । तथा च धर्मत्वादावतिव्याप्तिः, इति **इन्द्रियग्राह्येति** गुणविशेषणम् । तथापि स्पर्श-त्वादावतिव्याप्तिः, अतस्तैजसेतीन्द्रियविशेषणम् । संयोगत्वादावतिव्याप्तिव्यपोहाय मात्रान्तं **तैजसेन्द्रियपदम्** । तस्मिन्नपि सकलपदकदम्बके प्रतिपाद्यमाने सत्ता-गुणत्वादावतिव्याप्तिः, अतो **रसावृत्ती**ति । रसावृत्ती रूपत्वमित्युक्ते द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिः, ततो **जाति**रिति । तथा चात्मत्वादावतिव्याप्तिः, तदर्थं **तैजसेन्द्रियमात्रग्राह्ये**ति । रसावृत्ति-तैजसेन्द्रियमात्रग्राह्यवृत्ती(त्ति)जाती रूपत्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मित्युक्ते तैजस्त्वादावतिव्याप्तिः, तस्यापि तैजसेन्द्रियमात्रग्राह्यप्रदीपप्रभादिद्रव्य-वृत्तित्वात्, रसावृत्तित्वाच्च । ततो गुणपदम् । तैजसेन्द्रियमात्रग्राह्यजाती रूपत्वमित्युक्ते नीलत्वादावतिव्याप्तिः, अतो **गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यत्वे सतीति** द्रष्टव्यम्। अन्यथा सकलपदसङ्ग्रहेऽपि लक्षणे तत्राऽतिव्याप्तिस्तदवस्थैवेति [३]रूपत्वलक्षणम् ॥३॥

रूपावृत्तीत्यादि । रूपे नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा तथोक्ता । जलस्य जलमयं वा इन्द्रियं जलेन्द्रियं-जिह्वा, तेन ग्राह्यः, स चाऽसौ गुणश्च, तत्र वृत्तिरस्या इति तथा । ततः पूर्ववदेवेति । तत्र जातिः रसत्वमित्युक्ते द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिः, अतो **गुणवृत्तीति** । तावत्युक्ते धर्मत्वादावतिव्याप्तिः, तत **इन्द्रियग्राह्ये**ति गुणविशेषणम् । तथा च गन्धत्वादावतिव्याप्तिः, इत्यतो **जले**ति । इयत्युक्तेऽपि सत्तादावतिव्याप्तिः, तन्निवृत्त्यर्थं **रूपावृत्तीति** । अथ रूपावृत्तीत्युक्ते आत्मादावतिव्याप्तिः, अतो जातिरित्युक्तम् । तथा च कर्मत्वादावतिव्याप्तिः, ततो **जलेन्द्रियग्राह्ये**ति । तथा[४] च मधुरत्वादावतिव्याप्तिः, अतो **गुणत्वावान्तरत्वे सतीति** बोद्धव्यम् । अन्यथा समग्रलक्षणेऽपि तत्प्रसङ्गादिति । जलेन्द्रियग्राह्यजाती रसत्वमित्युक्ते सत्ता-गुणत्वादावतिव्याप्तिः, तदर्थमाद्यविशेषणम् । **गुणवृत्ती**तिपदं च स्पष्टार्थमिति रसत्व[५]लक्षणम् ॥४॥

पार्थिवेन्द्रियेत्यादि । पृथिव्या विकारः पार्थिवं पृथिवीद्रव्यनिः-पन्नमित्यर्थः । पार्थिवं च तदिन्द्रियं च तथा, नासिकेत्यर्थः । तेन ग्राह्यः, स चाऽसौ गुणश्च, तत्र वृत्तिर्यस्याः सा तादृक् ।[१०] ततो वृत्त्यन्तविशेषणद्वयेन प्राग्वद् विग्रह इति । तत्र जातिर्गन्धत्वमित्युक्ते स्पर्शत्वादावतिव्याप्तिः, अतः **स्पर्शावृत्ती**ति । तथा च द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिः, ततो **गुणवृत्तीति**[११] । तथा च धर्मत्वादावतिव्याप्तिः, तदर्थमिन्द्रियग्राह्येति गुणविशेषणम् । तावत्युक्तेऽपि रूपत्वादावतिप्रसङ्गः, तदपोहार्थं पार्थिवेतीन्द्रियविशेषणम् । पार्थिवं गन्धत्वमित्युक्ते चाऽसम्भवः, अतो **जाति**रिति । तथा[१२] सामानाधिकरण्येऽसम्भवः, वैयधिकरण्ये च घटत्वादावतिव्याप्तिः, तदपोहार्थ**मिन्द्रियग्राह्ये**ति । तथा च सत्तादावतिव्याप्तिः, अत उक्तं **स्पर्शावृत्तीति** । तावत्युक्ते न कोऽपि दोषस्तथापि **गुणवृत्तीति** पदं स्पष्टार्थमिति सम्भाव्यते । सुरभित्वादावतिव्याप्तिव्यपोहार्थं **गुणत्वावान्तरत्वे** सतीति द्रष्टव्यमिति गन्ध[१३]त्वलक्षणम् ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपत्वेत्यादि । रूपत्वमेव लक्षणं स्वरूपं यस्य तत्तथा । तच्च तदवच्छेदकं[१३], तेनाऽवच्छिन्नं विशिष्टम् । एतावता रूपमित्यर्थः । तथाभूतविशेषणस्याऽन्या(?)धिकरणकत्वाभावात् तस्याऽत्यन्ताभावः, तस्याधिकरणं सदापि रूपरहितमिति भावः । विभुत्वस्य सकलमूर्त्तद्रव्यसंयोगित्वस्याऽनधिकरणं मूर्त्तमित्यर्थः । तादृशे द्रव्ये वृत्तिरस्येति तथा । विशेष्यति(ते)द्रव्यमनेनेति विशेषः, स चाऽसौ गुणश्च, तादृक् चाऽसौ विशेषगुणश्चेति विग्रहः । तत्र वृत्तिर्यस्याः सा तथा । अवान्तरे वर्तमाना जातिरवान्तरजातिः । गुणत्वस्याऽवान्तरजातिः सा तथा । गुणत्वस्य साक्षाद्व्याप्यजातिरित्यभिसन्धिः । ततश्च वृत्त्यन्तविशेषणेन कर्मधारय इति । तत्र जातिः स्पर्शत्वमित्युक्ते सत्तायामतिव्याप्तिः, ततो**ऽवान्तरेति** । तथा च द्रव्यत्वेऽतिप्रसङ्गः, ततो **गुणत्वेप्ति** । तावत्युक्ते संयोगत्वादावतिव्याप्तिः, तत उक्तं **विशेषगुणवृत्तीति** । तावत्युक्ते शब्दत्वादावतिव्याप्तिः, ततो वक्ति **विभुत्वे**त्यादि । तथा च रूपत्वादावतिव्यापकता, तस्यापि विभुत्वाऽनधिकरण घटादिद्रव्यवृत्तिविशेषगुणवृत्तित्वाद् गुणत्वावान्तर-जातित्वाच्चेत्युक्तं **रूपत्वे**त्यादि[१४] । गुणवृत्त्यन्ते च लक्षणे कृते गुणत्वादावति-व्याप्तिः, तन्निवृत्त्यर्थमुक्तं **गुणत्वेत्यादी**ति । विभुत्वानधिकरणेति द्रव्यविशेषण-व्यतिरेके च सुखत्वादावतिव्याप्तिः, तदर्थं तदुपादानम् । विशेषपदाभावे च संयोगत्वादावतिव्याप्तिः, तदपोहाय तदुपादानम् । विशेषान्ते च लक्षणे कृतेऽसम्भवः, तदपोहार्थं विशेषपदस्य गुणविशेषणत्रयाणार्थं **गुणत्वे**त्यादीति । इति स्पर्शत्वलक्षणम् ॥६॥

गगनेत्यादि । गगने समवेतो यः सामान्यगुणः, तत्र वृत्तिर्यस्याः सा तथा । द्वयोस्तिष्टतीति द्विष्टः, स चासौ गुणश्च संयोगादिलक्षणः, तन्मात्रे-सर्वस्मिन्नपि द्विष्टगुणे नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा तथा । परिमाणं च पृथक्त्वं च तयोः तिष्ठा-स्थितिर्यस्य स तथा । स चाऽसावत्यन्ताभावश्च, तस्य प्रतियोगिनी, तद्भावस्तत्ता, सैवाऽवच्छेदकं, तेनाऽवच्छिन्ना गुणत्वस्य साक्षाद्व्याप्या चाऽसौ जातिश्च । जातौ व्याप्यत्वं च स्वसमानाधिकरणजातिसमानाधिकरणात्य-न्ताभावप्रतियोगिजातित्वमिति । तथा च विशेषणचतुष्टयेन समानाधिकरणसमास इति । तत्र जातिः संख्यात्वमित्युक्ते सत्तायामतिव्याप्तिः, अतो **व्याप्ये**ति । तावत्युक्तेऽपि द्रव्यत्वादावतिप्रसङ्गः, तद्व्यवच्छेदकृते **गुणत्वे**ति । तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैकत्वादावतिव्याप्तिः, ततो गुणत्वपुरःसरं **साक्षादिति** पदम् । इयत्युक्ते च परिमाणत्वादावतिव्याप्तिः, अतः परिमाणेत्याद्यवच्छिन्नान्तं जातिविशेषणम् । तथापि संयोगत्वादावतिव्याप्तिः, अतो **द्विष्टेत्यादि** । विभागत्वादावतिव्याप्तिव्यपोहार्थं **मात्रेति** । तावत्युक्तेऽपि रूपत्वादावतिव्याप्तिः, अतः **सामान्येत्यादि** । तथा च गुरुत्वादावतिव्याप्तिः, अत उक्तं **गगनेत्यादि** । गगनसमवेतगुणवृत्तिजातिः संख्यात्वमित्युक्ते शब्दत्वेऽतिव्याप्तिः, अतः **सामान्येति** । तथा च संयोगत्वादावतिव्याप्तिः, तदपोहार्थं **द्विष्टेत्यादि** । तथा च परिमाणत्वादावतिव्याप्तिः, ततः **परिमाणेत्यादि** । एवमपि एकत्वादावतिप्रसङ्गः, ततः प्रोक्तं **गुणत्वसाक्षाद्व्याप्येति** । द्वितीय-चतुर्थविशेषणोपादाने च परिमाणत्वादावतिव्याप्तिः, अतस्तृतीयविशेषणोपादानम् । शब्दत्वादावतिव्याप्तिव्यपोहार्थंमाद्यं विशेषणम् । गगनसमवेतगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिरित्युक्ते चाऽसम्भवः, तदपोहाय **सामान्यगुणवृत्तीति** । शेषं स्वयमेवोऽभ्यूह्यमिति संख्यात्वलक्षणम् ॥७॥

संख्यासमवायीत्यादि । संख्या असमवायि कारणं यस्य स तादृक् । तत्र वृत्तिर्यस्याः सा तथा । अपेक्षाबुद्धिरसाधारणं कारणं यस्य स तथा । एतावता परत्वाऽपरत्व-द्वित्व-द्विपृथक्त्वादयो गुणास्तथारूपा लभ्यन्ते । तथा च **प्रशस्तभाष्यं** - परत्वाऽपरत्व-द्वित्व-द्विपृथक्त्वादयो बुद्ध्यपेक्षा इति ॥

तत्र नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा तथा, गुणत्वस्य साक्षाद्व्याप्या, ततो विशेषणत्रयस्य जात्या सह कर्मधारय इति । यद्वा साक्षाद्व्याप्या चासौ जातिश्चेति, ततो गुणत्वपदेन सम्बन्धवाचकविभक्त्यन्तेन समासः । ततः प्राचीनविशेषणद्वयेन कर्मधारय इति ।

तत्र जाति[:]परिमाणत्वमित्युक्ते सत्तायामतिव्याप्तिः, अतो **व्याप्येति** । घटत्वादावतिव्याप्तिभङ्गाय **गुणत्वेति** । तथा च नीलत्वादावतिव्याप्तिः, तदपोहाय **साक्षादिति** । तथा च परत्वादावतिव्याप्तिः, **ततोऽपेक्षेत्यादि** । तथा च रूपत्वादावतिव्याप्तिः, तदर्थमुक्तं **संख्येत्यादीति** । संख्यासमवायिकारणकवृत्तिः जातिः परिमाण[त्व]मित्युक्ते संख्यात्वादावतिव्याप्तिः, तस्याप्येकत्वसंख्यासमवायिकारणकद्वित्वादिगुणवृत्तिजातित्वात्, अत उक्तमपेक्षेत्यादि । तावत्युक्तेऽप्यणुत्वादावतिव्याप्तिः, अतो **गुणत्वेत्यादि** प्रत्यपादि । द्वितीयविशेषणमात्रोपादाने रूपत्वा[दा]वतिव्याप्तिः, अतः प्रथमं तदुपादानम् । शेषं पूर्ववत् । आद्यान्त्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषणोपादानं[१५] च संख्यात्वादावेवाऽतिव्याप्तिस्तन्निवृत्त्यर्थं शेषविशेषणोपादानमिति परिमाणत्वलक्षणम् ॥८॥

अपेक्षेत्यादि । अपेक्षाबुद्धिरसाधारणकारणं यस्य स तथा । एतावता एतादृशो गुणस्स कश्चित् तत्र वृत्तिरस्याः सा तथा । समयः कालस्तत्र वृत्तिर्यस्य स तथा । स चाऽसौ गुणश्च, तत्र वृत्तिर्यस्य स तथा, स चाऽसावत्यन्ताभावश्च, तस्याऽप्रतियोगिनी कालसमवेत→गुणवृत्तिरित्यर्थः । संख्यायां नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा तथा । ततः पूर्ववत् समास इति ।

तत्र जातिः पृथक्त्वमित्युक्ते संख्यात्वादावतिव्याप्तिः, अतः **संख्यावृत्ती**ति । तावत्युक्ते च द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिः, अत उक्तं **गुणे**त्यादि । तावत्युक्तेऽपि रूपत्वादावतिव्याप्तिः, ततः **समवेतवृत्ती**ति←गुणविशेषणम् । तथा च परिमाणत्वा-दावतिप्रसङ्गः, ततः प्रोक्त**मपेक्षे**त्यादि । अपेक्षाबुद्ध्यसाधारण-कारणवृत्तिजातिः पृथक्त्वमित्युक्ते परत्वादावतिव्याप्तिः, अतः **समये**त्यादि । तथापि संख्यात्वेऽति-व्याप्तिरतः **संख्याऽवृत्ती**ति । शेषमुक्तानार्थमिति पृथक्त्व-लक्षणम् ॥९॥

द्रव्याऽसमवायीत्यादि । द्रव्यस्याऽसमवायिकारणं यो गुणस्तत्र वृत्तिर्यस्य स तादृक्षः, स चासौ अत्यन्ताभावश्च, तस्याऽप्रतियोगिनी द्रव्यसमवायिकारणगुणे वर्तमानेत्यर्थः । गुणत्वस्याऽवान्तरजातिरिति ।

तत्र जातिः संयोगत्वमित्युक्ते सत्तायामतिव्याप्तिः, इत्युक्त**मवान्तरे**ति । तथा च द्रव्यत्वेऽतिव्याप्तिः, अतो **गुणत्वे**ति । तथा च रूपत्वादावतिव्याप्तिः, अतो **द्रव्यत्वे**त्यादि । आद्यविशेषणोपादाने सत्तादावतिव्याप्तिः, तदपाकृतये **गुणत्वे**त्याद्युक्तमिति संयोगत्वलक्षणम् ॥१०॥

क्रियेत्यादि । क्रिया-कर्म असमवायिकारणं यस्य स तथा । तथा च **प्रशस्तपादभाष्यं** - संयोग-विभाग-वेगाः कर्मजा इति ॥ द्वयोस्तिष्ठतीति द्विष्टः । ततो विशेषणद्वये गुणपदेन कर्मधारयः । तादृशे गुणे वृत्तिर्यस्याः सा तथा । संयोगे नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा तथा । गुणत्वस्य साक्षाद्व्याप्यजातिरिति व्याख्या(प्या)न्तविशेषणेन पूर्वं समासे कृते वृत्त्यन्तविशेषणद्वयेन ततः कर्मधारय एव कार्य इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र जाति[:]विभागत्वमित्युक्ते सत्तायामतिव्याप्तिः, अतो व्याप्येति । तावतापि द्रव्यत्वादावतिप्रसङ्गः, ततो **गुणत्वे**ति । नीलत्वादावतिव्याप्तिव्यपोहाय **साक्षादि**ति । संयोगत्वादावतिव्याप्तिव्यवच्छेदे(दाय) **संयोगावृत्ती**ति । रूपत्वादावतिव्याप्तिभङ्गाय **द्विष्टे**त्यादि । तावत्युक्तेऽपि[२०] पृथक्त्वादावतिव्याप्तिः, तस्याऽप्यनेकाश्रितद्विपृथक्त्ववृत्तित्वात्, इत्यतः **क्रिये**त्यादि । क्रियाऽसमवायिकारणकगुणवृत्तिजातिर्विभागत्वमित्युक्ते च संस्कारत्वेऽतिव्याप्तिः, अतो **द्विष्टे**ति गुणविशेषणम् । तावत्पदोपादाने च संयोगत्वेऽतिव्याप्तिस्तदवस्थैव, ततः **संयोगाऽवृत्ती**ति । तावति लक्षणे कृते च सत्तायामतिव्याप्तिः, ततो **गुणत्वव्याप्ये**ति । विभागत्वावान्तरजातेर्विभागत्वात्मकत्वव्यवच्छेदार्थं **साक्षादि**ति । शेषं स्वयमेव बोध्यमिति विभागत्वलक्षणम् ॥११॥[11]

अपरत्वेत्यादि । अपरत्वरूपे गुणे नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा यथा । सकलश्चासौ परत्वगुणश्च तत्र वृत्तिरस्याः सा तथा । ततो वृत्त्यन्तविशेषणद्वयेन स एव समास इति । तत्र जातिः परत्वमित्युक्ते द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिः, अतो **गुणवृत्ती**ति । रूपत्वादावतिव्याप्तिव्यपोहाय परत्वेति । ज्येष्टत्वादावतिव्याप्तिव्यपोहाय **सकले**ति । [२१]अत्र 'सकल' पदव्यवच्छेद्यं सम्यग् नावबोध्यत इति ध्येयम् । इति परत्वलक्षणम् ॥१२॥[12]

परत्वेत्यादि । परत्वे नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा तथा । सकले अपरत्वे वृत्तिरस्या इति तथा । ततः प्राग्वत् । तत्र जातिरपरत्वमित्युक्ते रूपत्वादावतिव्याप्तिः, तदर्थमपरत्वेत्यादि । कनिष्टत्वादावतिव्याप्तिव्यपनुदे **सकले**ति । सत्तादावतिव्याप्तिभङ्गाय **परत्वावृत्ती**ति । आद्यविशेषणोपादाने च संयोगत्वादावतिव्याप्तिः, तदर्थं द्वितीयविशेषणोपादानम् । अत्रापि 'सकल' पदं चिन्त्यं पूर्ववदेवेति अपरत्वलक्षणम् ॥१३॥[13]

सुखावृत्तीत्यादि । सुखे नास्ति वृत्तिः-समवायो यस्याः सा तथा । सकलाश्च ता बुद्धयश्चाऽनुभव-स्मृतिप्रभृतिभेदभिन्नाः, तत्र वृत्तिर्यस्याः सा तथा, ततः प्रागिवेति । तत्र जातिर्बुद्धित्वमित्युक्ते द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिः, अतो **बुद्धिवृत्ती**ति । तथा च प्रमात्वादावतिव्याप्तिः, अतः **सकले**ति । तथा च सत्ता-गुणत्वादावतिव्याप्तिः, तदपोहाय **सुखावृत्ती**ति । द्वितीयविशेषणव्यतिरेकेण[२२] च लक्षणे कर्मत्वादावतिव्याप्तिः, तन्निवृत्त्यर्थं **सकले**त्यादि । बुद्धिपदाभावे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाऽसम्भवः, ततस्तदङ्गीकारः, इति बुद्धिलक्षणम्[14] ॥१४॥

रूपवद्वृत्तीत्यादि । रूपवती(ति)वृत्तिर्यस्याः [२३]सा तथा । गगने नास्ति वृत्तिर्यस्य स तथा । अपेक्षाबुद्ध्या अजन्यः । एतद्विशेषणत्रयविशिष्टे सामान्यगुणे वृत्तिर्यस्याः सा तथेति जातिविशेषणम् । गुरुत्वादन्या गुणत्वस्याऽवान्तरा चेति विशेषणद्वयं च जाति(ते)रेवेति । तत्र जातिः द्रवत्वमित्युक्ते सत्तायामतिव्याप्तिः, अतो**ऽवान्तरे**ति । तावत्युक्ते च द्रव्यत्वादावतिप्रसङ्गः, ततो **गुणत्वे**ति । गुरुत्वे चाऽतिव्याप्तिव्यवच्छेदाय **गुरुत्वान्ये**ति । रूपत्वादावतिव्याप्तिभङ्गाय **सामान्य-गुणवृत्ती**ति । संख्यात्वादावतिव्याप्तिनिरसनाय अपेक्षाबुद्ध्यजन्येति गुणविशेषणम् । तावत्यभिहिते च संयोगत्वादावतिव्याप्तिः, ततो **गगना**[२६]**ऽवृत्ती**ति । रूपवद्वृत्तीति विशेषणं च व्यवच्छेद्याभावेन व्यर्थमिव प्रतिभातीति चिन्त्यम् ।

अत्राऽऽह **कश्चित्**, गगनेत्यादिलक्षणे कृते संस्कारत्वजातावतिव्याप्तिः, वेगस्य गगनाऽवृत्त्यपेक्षाबुद्ध्यजन्यसामान्यगुणत्वात्, गुरुत्वान्यगुणत्वाऽवान्तर जातित्वाच्च संस्कारत्वस्येति, तद्व्यवच्छेदार्थं **रूपवद्वृत्ती**तिविशेषणम् ॥[२४]

तदयुक्तम् । वेगस्यापि रूपवद्वृत्तित्वेनाऽतिव्याप्तेस्तदवस्थत्वात् । न च रूपवद्वृतिपदस्य रूपवन्मात्रवृत्तित्ववाचकत्वेन विवक्षित्वात्, वेगस्य च तन्मात्रवृत्तित्वाभावात् तद्वृत्तिविशेषणोपादानात् तत्राऽतिव्याप्तेः परिहार इति वाच्यम् । तदा गगनाऽवृत्तीति विशेषणस्य वैयर्थ्यापातात्, रूपवन्मात्रविशेषणेनैव तस्य चरितार्थत्वादित्यलं प्रसङ्गेनेति । गगनावृत्ति-जातिर्द्रव्य(व)त्वमित्युक्ते च परत्वादावतिव्याप्तिः, तदन्तकृते **अपेक्षाबुद्ध्यजन्ये**ति । तावत्युक्ते च मनस्त्वादावतिव्याप्तिः, अतः **सामान्ये**त्यादि । गुणव्यतिरेके लक्षणे त्वसम्भवः, तन्निवृत्त्यर्थं **गुणे**ति । सामान्यपदं सुखत्वादावतिव्याप्तिनिरासार्थम् । गुरुत्वजातावतिव्याप्तिव्यपोहाय **गुरुत्वान्ये**ति । तावति कृते च सत्तादावतिव्याप्ति-व्यवच्छेदाय **गुणत्वावान्तरे**ति । शेष सुगमम् । इति द्रवत्वलक्षणम्[15] ॥१५॥

गगनवृत्तीत्यादि । गगने वृत्तिर्यस्य स तथा । एतादृशो यो विशेषगुणस्तत्र वृत्तिरस्याः सा तथा । रूपे नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा तथा । एतद्विशेषणद्वयविशिष्टा जातिः शब्दत्वमित्यर्थः ॥ तत्र जातिः शब्दत्वमित्युक्ते सत्तादावतिव्याप्तिः, तन्निवृत्त्यर्थं **रूपाऽवृत्ती**ति । कर्मत्वादावतिव्याप्तिव्यवच्छेदार्थं **गुणवृत्ती**ति । तथा च संयोगत्वादावतिव्याप्तिव्यवच्छेदाय **विशेषे**ति । तथा च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुखत्वादावतिव्याप्तिः, तदपास्त्यै **गगनवृत्ती**ति । आद्यविशेषणोपादाने च, सामानाधिकरण्ये, द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिः, वैयधिकरण्ये च सत्तादावतिव्याप्तिः, ततो **विशेषे**ति । तथा चाऽसम्भवः, तद्व्यावृत्त्यर्थं **गुणवृत्ती**ति । सत्तादावतिव्याप्तिव्यवच्छेदकृते **रूपावृत्ती**ति । शेषं सुगमम् । इति शब्दत्वलक्षणम्[16] ॥१६॥

ऊर्ध्वदेशेत्यादि । ऊर्ध्वदेशेन यः क्रियावतो द्रव्यस्य संयोगस्तस्य हेतुः-कारणं या क्रिया-कर्म, तत्र वृत्तिरस्याः सा तथा । तादृशी कर्मत्वस्याऽवान्तरजातिरुत्क्षेपणत्वमित्यर्थः ॥ तत्र जातिरुत्क्षेपणत्वमित्युक्ते सत्तादावतिव्याप्तिः[२६], अतोऽवान्तरेति । तथा च द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिः, ततः **कर्मत्वे**ति । अपक्षेपणत्वादावतिव्याप्तिव्यवच्छेदार्थं ऊर्ध्वदेशेत्यादि निगदितम् । कर्मत्वपदाभावे च कर्मत्वादावतिप्रसङ्गः, तद्भङ्गाय **कर्मत्वे**ति । अवान्तरपदाभावे च, वैयधिकरण्ये चाऽसम्भवः, सामानाधिकरण्ये तु कर्मत्वजातावतिव्याप्तिः, अतस्तदुपादानम् । पुनरसम्भवव्यवच्छित्त्यै **क्रियावृत्ती**ति । कर्मत्वावान्तर-विशेषणव्यतिरेके च सत्तादावतिव्याप्तिः, अतस्तदादानम् । शेषं सुगमम् । इति उत्क्षेपणत्वलक्षणम्[17] ॥१७॥

कपिलावृत्तीत्यादि । कपिले नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा तथा । सकलसितेषु[२७] रूपेषु वृत्तिर्यस्याः सा तथा । ईदृशी रूपत्वस्याऽवान्तरजातिः सितत्वमित्यर्थः ॥ तत्र जातिः सितत्वमित्युक्ते सत्तायामतिव्याप्तिः, अतोऽवान्तरेति । तावत्युक्ते च द्रव्यत्वादावतिप्रसङ्गः, तदपोहकृते **रूपत्वे**ति । नीलत्वादावतिव्याप्तिनिरासाय **सितवृत्ती**ति । शुक्लतरत्वादौ प्रसङ्गवारणाय **सकले**ति । कपिलाऽवृत्तीति पदं तु व्यर्थमिव प्रतिभाति, व्यवच्छेद्याभावात् । तत्पदाङ्गीकरणे च रूपत्वाऽवान्तरेतिपदस्य वैयर्थ्यापातादिति हृद्यवधार्यमेवाऽऽर्यवर्यैः । सकलसितवृत्तिजातिः सितत्वमित्युक्ते पुनः सत्ता-गुणत्वादावतिव्याप्तिः, इत्यतो **रूपत्वावान्तरे**ति । रूपत्वपदाभावे तु रूपत्वादावतिव्याप्तिः, अतस्तदङ्गीकारः । अवान्तरपदव्यतिरेके च लक्षणे प्राग्वदवबोध्यमिति । शेषं तु सुगमं स्वयमेव ज्ञेयमिति सितत्वलक्षणम्[18] ॥१८॥

सत्तर्कयुक्त्युत्कटसिंहनादः, कुवादिदुर्दन्तिघटासु सिंहः ।
श्रीसूरचन्द्रः स मदीयविद्या-गुरुश्चिरं नन्दतु विज्ञसिंहः ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यः सम्प्रत्यवनीतले गुरुगुणैः श्रीगौतमीयत्यलं
साम्यं यस्य तु **सेनशिष्यविजयाह्वः** सूरिरेवाश्नुते ।
सूरिश्रेणिवतंस**हीरविजये** तस्मिंश्चिरं जीवति
व्याख्येयं विहिता तपागणपतौ प्रामाणिकानां हिता ॥२॥

सुविहितमणिमालानायकः सद्गुणाढ्यः
सुमतिविजयनामा **वाचक**ग्रामणीर्यः ।
जयति विमलशीलस्तत्पदाम्भोजभृङ्गो
गुणविजय इतीमां ग्रन्थलीलां चकार ॥३॥

इति श्रीजातिविवृतिः ॥[२९]

टिप्पणानि :

1. आत्मवृत्त्यवृत्त्यात्मवृत्त्यत्यन्ताभावऽप्रतियोगिद्रव्यत्वान्यजातिः आत्मत्वम् ॥
2. गगनाऽवृत्तिस्पर्शवत्त्वात्यन्ताभावाधिकरणक्रियावद्वृत्तिजातिर्मनस्त्वम् ॥
3. रसाऽवृत्तितैजसेन्द्रियमात्रग्राह्यगुणवृत्तिजाती रूपत्वम् ।
4. रूपाऽवृत्तिजलेन्द्रियग्राह्यगुणवृत्तिजाती रसत्वम् ॥
5. पार्थिवेन्द्रियग्राह्यवृत्तिस्पर्शाऽवृत्तिजातिर्गन्धत्वम् ॥
6. पत्वादिलक्षणतावच्छेदकावच्छिन्नात्यन्ताभावाधिकरणविभुत्वाऽनधिकरण-द्रव्यवृत्ति विशेषगुणत्वावान्तरजातिः स्पर्शत्वम् ॥
7. गगनसमवेतवृत्तिसामान्यगुणवृत्तिद्विष्ठगुणमात्राऽवृत्तिपरिमाणपृथक्त्वनिष्ठा-त्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नागुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिः संख्यात्वम् ॥
8. संख्याऽसमवायिकारणकवृत्त्यपेक्षाबुद्ध्यसाधारणकारणकावृत्तिगुणत्व-साक्षाद्व्याप्यजातिः परिमाणत्वम् ॥
9. अपेक्षाबुद्ध्यसाधारणकारणसमयवृत्तिगुणवृत्त्यत्यन्ताभावाऽप्रतियोगि-संख्याऽवृत्तिजातिः पृथक्त्वम् ॥
10. द्रव्यासमवायिकारणगुणवृत्त्यत्यन्ताभावाऽप्रतियोगिगुणत्वावान्तरजातिः संयोगत्वम् ॥
11. क्रियाऽसमवायिकारणद्विष्ठगुणवृत्तिसंयोगावृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजाति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभागत्वम् ॥

12. अपरत्वगुणावृत्तिसकलपरत्ववृत्तिजातिः परत्वत्वम् ॥

13. परत्वाऽवृत्तिसकलाऽपरत्ववृत्तिजातिरपरत्वत्वम् ॥

14. सुखाऽवृत्तिसकलबुद्धिवृत्तिजातिर्बुद्धित्वम् ॥

15. रूपवद्वृत्तिगगनाऽवृत्त्यपेक्षाबुद्ध्यजन्यसामान्यगुणवृत्तिगुरुत्वान्यगुणत्वावान्तरजातिर्द्रवत्वत्वम् ॥

16. गगनवृत्तिविशेषगुणवृत्तिरूपाऽवृत्तिर्जातिः शब्दत्वम् ॥

17. ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुक्रियावृत्तिकर्मत्वावान्तरजातिरुत्क्षेपणत्वम् ॥

18. कपिलाऽवृत्तिसकलसितवृत्तिरूपत्वावान्तरजातिः सितत्वम् ॥

(२) मां. संज्ञकप्रतिगतपाठान्तराणि

१. **ऐँ नमः ॥** २. (श्लोकानन्तरं) **श्रीमद् विद्यागुरुभ्यो नमः** ॥ ३. **तत्तदधिकरणेऽत्यन्ता०** । ४. **विशेषणत्रयस्या०** ॥ ५. 'आत्मगुणोपादाने' इत्यस्य स्थाने मां. प्रतौ- "आत्मवृत्त्यवृत्तिजातिरात्मत्वमित्युक्ते पृथिवीत्वादावतिव्याप्तिः, ततो द्वितीयमात्मेत्यादिविशेषणम् । द्रव्यत्वादावति-व्याप्तिव्यपोहार्थं द्रव्यत्वान्येति । द्वितीयविशेषणोपादाने" - एतावान् पाठः ॥ ६. **तादृशं क्रिया०** ॥ ७. **वृत्त्यन्तविशे०** ॥ ८. **०दिति । स्पर्शवत्त्वाद्युक्ते च सत्ताद्रव्यत्वादावतिव्याप्तिरिति गगनावृत्तीति । स्पर्शाद्यधिकरणं च कर्मत्वादावतिव्याप्तिः, अतः क्रियावदिति मनस्त्व०** ॥ ९. **तथापि** ॥ १०. **तादृक्, तथा स्पर्शे नास्ति वृत्तिर्यस्याः सा तादृक् ततो०** ॥ ११. अत्र आदर्शप्रतौ '**गुणावृत्ती**'तिपाठः ॥ १२. **तथापि** ॥ १३. **०दकं च, तेना०** ॥ १४. **०दीति । रूपत्वेत्यादिगुण०** ॥ १५. **गुणविशेषणत्वार्थं** ॥ १६. **स्वयमभ्यूह्यं** ॥ १७. **प्रशस्तपाद०** ॥ १८. **०प्र**[illegible] ॥ १९. एतदन्तर्गतः पाठः मां. प्रतौ नास्ति ॥ २०. **०त्युक्ते पृथ०** ॥ २१. "सत्तायामतिव्याप्तिव्यवच्छित्तये प्रथमविशेषणम् । आद्यविशेषणोपादाने च कर्मत्वादावतिव्याप्तिस्तदपोहकृते सकलेत्यादि अत्र च" इत्यधिकः पाठः मां. प्रतौ ॥ २२. **व्यतिरेके च** ॥ २३. **०र्यस्य स तथा** ॥ २४. **विशेषणमिति** ॥ २५. **शेषं सुबोधमिति** ॥ २६. **सत्तायामति०** ॥ २७. **सकलेषु सितेषु** ॥ २८. **सेनशीर्ष०** ॥ २९. **इति श्री मितभाषिणीजातिविवृतिः ॥ श्रीः । श्रीः । श्रीः ॥**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ श्रीमहावीरस्वामिने नमः ॥

'भुवनसुन्दरीकथा' की विशिष्ट बातों का संक्षिप्त अवलोकन

विजयशीलचन्द्रसूरि

[नागेन्द्रकुल के प्रसिद्ध आचार्य आर्यसमुद्र के शिष्य विजयसिंहाचार्यने संवत् १७५ में 'भुयणसुंदरीकथा'की रचना की । उसकी एकमात्र ताडपत्र-प्रति खम्भात के शान्तिनाथ ताडपत्र भण्डारमें मौजूद है । उस प्रतिके आधार से इस ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है, जो दो विभागोंमें प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी (PTS)से प्रकाशित है । उस ग्रन्थ में आनेवाली कतिपय विशेष बातों के बारेमें उक्त प्रकाशन में ही एक शोधलेख दिया गया है, वह ही यहां मुद्रित किया जा रहा है । मुझे सूचना दी गई कि उक्त कथाग्रन्थ सभी के पास पहुंच नहि पाएगा, अतः यह लेख अगर 'अनुसन्धान'में पुनः मुद्रित करवाओ तो ठीक होगा । अतः यह यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है ।]

भुवनसुन्दरी की कथा का यह ग्रन्थ मुख्यतया अद्भुत रस का प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ है । यहां वीररस, शान्तरस, करुणरस नहीं है ऐसा नहीं, किन्तु समग्र कथा का केन्द्रीय रस तो अद्भुत रस ही प्रतीत होता है। वैसे यह ग्रन्थ घटना-प्रचुर है; आप देखेंगे कि कथा शुरू होते ही विविध घटनाओं का दौर शुरू हो जाता है । एक घटना पूरी हुई भी नहीं कि उसमें से दूसरी घटना फूट निकलेगी ! फिर ये सभी घटनाएं अत्यन्त विस्मयजनक एवं चमत्कार-भरपूर भी हैं । जैसे जैसे इन चमत्कारिक घटनाओं को हम पढ़ेंगे, वैसे वेसे हमारे चित्त में अद्भुत रस का एक पूर उमड़ने लग जाएगा।

फिर भी इस कथाग्रन्थ में कई बातें ऐसी भी है जिनका सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक व ऐतिहासिक मूल्यांकन होना चाहिए । इसका सांस्कृतिक एवं तुलनात्मक या समीक्षात्मक अध्ययन तो होना ही चाहिए, किन्तु अभी तो मैं, यहाँ, इस ग्रन्थ में बिखरे हुए कुछ तथ्यों या मुद्दों के प्रति अंगुलिनिर्देश ही करूंगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१)

इस कथाग्रन्थ का नाम भले 'भुवनसुन्दरी कथा' हो, किन्तु ग्रन्थ का अत्यधिक हिस्सा तो भुवनसुन्दरी के पिता वीरसेन को ही समर्पित है। वीरसेनचरित का प्रारम्भ होता है गाथाङ्क ८२२ (पृ. ७६) से; और अन्त होता है गाथाङ्क ७८९९ (पृ. ७२०) पर । अर्थात् ८९४४ गाथा-प्रमाण वाले ग्रन्थ की अन्दाजन ७००० से कुछ अधिक गाथाएं तो वीरसेन को ही नायक बनाये हुई हैं । वास्तव में यह कथा नायिकाप्रधान न होकर नायकप्रधान लगती है; अथवा होनी चाहिए । और तब इसका नाम होगा 'वीरसेणकहा' या 'वीरसेणचरियं' फिर भी कर्ता ने इसको नायिकाप्रधान रखकर 'भुवनसुन्दरीकथा' नाम क्यों दिया होगा ? प्रश्न होना स्वाभाविक है । लगता है कि ग्रन्थकार तिलकमञ्जरी, कादम्बरी, उदयसुन्दरी, कर्पूरमञ्जरी, लीलावती, विलासवती-जैसी नायिकाओं को प्राधान्य देकर रचे गये अद्भुत ग्रन्थों की परम्परा का अनुसरण करना चाहते हैं । यदि कादम्बरी का नाम 'चन्द्रापीडकथा' ऐसा होता तो विद्याविश्व उसके प्रति इतना अधिक आकर्षित होता ? शक्यता बहुत कम है । ऐसा ही अन्य कथा-काव्यों के बारे में भी कहा जा सकता है । ठीक उसी तरह, यदि इसका नामाभिधान 'वीरसेन-चरित' रखा गया होता, तो इतना प्रस्तुत न बनता, जितना 'भुवनसुन्दरी' नाम देने से बनता है ।

(२)

अब देखें कुछ धार्मिक बातें :

१. जिन-प्रतिमा की विलेपनपूजा के लिए चन्दन, कपूर इत्यादि उत्तम सुरभि-द्रव्यों को पानी में लसोट कर उपयोग में लिया जाता है । पूजा-समाप्ति के बाद तो द्रव शेष रह जाता है, उसका उपयोग कोई गृहस्थ अपने देह-परिभोग के वास्ते नहीं कर सकता है, यह सामान्य प्रचलित नियम है । इस ग्रन्थ में जरा जुदी बात मिलती है । कुमार हरिविक्रम और भुवनसुन्दरी का प्रथम मिलन जब चन्द्रप्रभु-जिनालय में हुआ, तब कन्या की सखी हाथ में चन्दनद्रव का कटोरा लाकर कुमार को कहती है कि "जिनपूजा करने के बाद शेष रहा हुआ यह समालभन (विलेपनद्रव्य) आप अपने अंग पर लगाएँ बाह्यान्तर ताप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को मिटावें" (गा. ६८४, पृ. ६४)

२. सामान्यतः जैन साधु किसी भी व्यक्ति को सांसारिक कामनाओं की प्राप्ति का उपाय नहीं बताते हैं । फिर, वे वीतराग की ही उपासना करने का कहेंगे । किन्तु इस ग्रन्थ में एक से अधिक बार जैन मुनि ऐसा मार्गदर्शन करते दिखाई देते हैं । उदाहरणार्थ, जब रानी विजयवती आचार्य निर्मलमतिसूरि की देशना सुनने के पश्चात्, सन्तानप्राप्ति की अपनी तीव्र कामना की पूर्ति के लिए पृच्छा करती है, तब आचार्यश्री उसको कूष्माण्डी (अम्बिका) देवी की आराधना करने से ईप्सित-प्राप्ति होने का कहते हैं (गा. ९२०-२२, पृ. ८५), और तदनुसार रानी के द्वारा की गई आराधना के जवाब में देवी वरदान भी देती है (गा. ९४२, पृ. ८७) ।

३. ऐसा ही दूसरा प्रसंग नवकारमन्त्र के प्रभाव का आता है । जब वीरसेन--कुमार सरोवर के किनारे पहुँचता है, तब वहाँ अकलंक मुनि उसे पूछते हैं कि 'इस गम्भीर सरोवर को तू कैसे पार करेगा ? एक काम कर, नवकारमन्त्र का स्मरण कर, सरोवर का जल उसके प्रभाव से स्थगित हो जाएगा, और तू पार निकल जाएगा (गा. २५८७-८८, पृ. २३६-३७) ।

४. नवकार के प्रभाव की दूसरी भी बात है, जो विस्मयजनक है । वीरसेन की भेंट घोर अरण्य में योगीन्द्र से होती है, तब योगीन्द्र उसको जुआ खेलने का आह्वान देता है । दोनों खेलने तो लगे, पर पूरा दिन बीतने पर भी कोई जीता नहीं । तभी वीरसेन ने नवकारमन्त्र का स्मरण किया, और उसके प्रभाव से वह जीत गया (गा. ५५४२-४४, पृ. ५०६-७) ।

५. शासनदेव की उपासना किस ढंग से करनी चाहिए, उस विषय में यह ग्रन्थ बड़ा मार्मिक मार्गदर्शन देता है । वीरसेन एवं चन्द्रश्री का पता पाने के लिए विचित्रयश राजा जब चक्रेश्वरी के सामने ध्यान लगा कर बैठता है, तब स्वयं देवी उसे यह संकेत देती है कि "तुम्हें ध्यान धरना हो तो वीतरागदेव का धरो । हम तो सराग देवता ठहरे; हम सराग पूजा यानी गीत, नृत्य आदि से ही प्रसन्न होंगे, ध्यान धरने से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं" (गा. ४०४३-४५, पृ. ३६९) ।

६. एक और विशिष्ट बात इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से मिलती है । हमारे यहाँ तीर्थ के या मन्दिर के नाम समर्पित की जानेवाली मिल्कत को 'देवद्रव्य' ही मानने की आजकल पद्धति है । यह मान्यता कब से प्रविष्ट हुई, पता नहीं । यह ग्रन्थ कुछ अलग ही बता रहा है । ग्रन्थकार श्रीविजयसिंहाचार्य प्रशस्ति में लिखते हैं कि "गोपादित्य श्रावक ने सोमेश्वरनगर का अपना त्रिभूमिक घर, श्रीउज्जयन्ततीर्थ के श्रीनेमिनाथ को भेंट किया, और उसने संघ को कहा कि मुनि-समूह के निवासार्थ यह घर मैं आपको अर्पण करता हूँ" (प्रशस्ति गा. १३-१४, पृ. ८१७) ।

यह तो स्पष्ट है कि मकान संघ को ही सौंपा जा सकता है। किन्तु वह जब नेमिनाथ के नाम भेंट किया जाता है तब तो वह, आज की धारणा के अनुसार, देवद्रव्य ही बन जाएगा; फिर उसमें मुनि-संघ का निवास कैसे हो सकता है ? । फिर भी ग्रन्थकार ने उस स्थान में निवास किया की है और इस ग्रन्थ का सर्जन भी वहाँ रहकर ही किया है, यह तो ऐतिहासिक तथ्य है ही (गा. १५-१६, पृ. ८१७) ।

७. मुखवस्त्रिका-मुँहपत्ती जैन साधु का एक आवश्यक उपकरण है । वह हाथ में ही रखा जाता था - ग्रन्थकार के काल में, ऐसा स्पष्ट उल्लेख इस ग्रन्थ में पाया जाता है (गा. ५८९३, पृ. ५३७)

(३)

और अब देखें कुछ सांस्कृतिक बातों का उल्लेख :

१. अनुकूल बात सुनते ही शुकन की गाँठ बांधने का रिवाज (गा. ९४०, पृ. ८८); २. कुमार-अवस्था पाते ही (राजपुत्र का भी) चूला (शिखा) संस्कार व उपनयन संस्कार (गा. १७४९, पृ. १६०); ३. सामुद्रकशास्त्र (गा. १९२२-६०, पृ. १७६-१८०); ४. समुद्र में उतरने से पहले नेत्र, नासिका व कान को ढांकने की बात (गा. ३३५०, पृ. ३०६); ५. जहाज चलानेवालों की परिभाषा (गा. ३३६८-७३, पृ. ३०७-८); ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवाह के अवसर पर मातृका-निमन्त्रण, ब्रह्मभोजन, सर्व-देवों का पूजन, नगरदेवता की पूजा इत्यादि प्रक्रिया का सूचन (गा. ४२९१-९२, पृ. ३९२); ७. भरत-नाट्यशास्त्र के उल्लेखपूर्वक 'लय' का स्वरूप-वर्णन (गा. ५३४२, पृ. ४८७) इत्यादि ।

२. कौलधर्म या कापालिक सम्प्रदाय की बातें इस में अनेक जगह आती हैं । इस सम्प्रदाय के साथ सम्बद्ध शब्दावली-भैरवी, कात्यायनी, चण्डिका, योगिनी, वीरवर्ग, दाक्षायणी, योगी (अघोरगण), क्षेत्रपाल (दारुणदाढ), (पृ. ३१३-१९); कौलशासन, योगीन्द्र (पृ. ५०४-५-६); योगीन्द्र (अघोरगण), चामुण्डा, भैरवीमुद्रा, कात्यायनी (५१९-२८); योगीन्द्र, कौलागम, कौलधर्म, भैरव, कौल, उड्डीशशास्त्र, (पृ. ५४४); भैरवायतन, कापालिक, मठ, शूलपाणि (योगी), चण्डरुद्र (योगिशिष्य), त्रिशूल, भैरवपूजाविधि, भैरव, लोहार्गल(यक्ष)(पृ. ७६२-६६); यह सब ध्यानार्ह है । उक्त सभी सन्दर्भों के अवलोकन से सहज ही पता लगता है कि ग्रन्थकार के समय में कापालिक सम्प्रदाय का व्याप भारतवर्ष में बहुत रहा होगा ।

(४)

कुछ ऐतिहासिक एवं पौराणिक तथ्यों का भी इसमें जिक्र किया गया है । उदाहरणार्थ,

१. पृ. ४१८ पर दशानन एवं राम के द्वारा प्रतिष्ठापित जिन-प्रतिमाओं का उल्लेख है (गा. ४५८६) ।

२. राम-रावण के निर्देश अन्यत्र भी देखे जाते हैं (गा. ४१५१, पृ. ३७९; गा. ५६३८ पृ. ५४१) । कृष्ण का भी उल्लेख यहाँ है (गा. ५९३७, पृ. ५४१) । इससे पता चलता है कि इस-भुवनसुन्दरी की कथा का घटना समय कृष्ण वासुदेव के बाद का होना चाहिए ।

३. इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है मथुरानगरीस्थित जिनस्तूप का (गा. ६५७०-७१, पृ. ५९९) । इस निर्देश से मालूम होता है कि ग्रन्थकार के समय में भी मथुरा में स्तूप का अस्तित्व था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. युद्ध में मारे गए सैनिकों की खांभी (भटस्तम्भ) बनाने के रिवाज़ का भी निर्देश गा. ७१३७, पृ. ६५१ में पाया जाता है ।

५. एक पौराणिक (जैन ऐतिहासिक) मान्यता का भी सूचन इसमें मिलता है : अंगइया (अंगदिका ?) नगरी के जिनालय की रत्नमय जिनप्रतिमा का रावण व राम के द्वारा प्रतिष्ठित किये जाने का सूचन (गा. ४५८६, पृ. ४१८) । वैसे स्तम्भन पार्श्वनाथ की रत्नप्रतिमा, जो अभी खम्भात में विद्यमान है, उसकी प्रतिष्ठा राम ने की थी, ऐसी जैन पौराणिक मान्यता है ही ।

(५)

ग्रन्थ में कहीं कहीं श्रीउमास्वातिजी एवं श्रीहरिभद्रसूरिजी के प्रतिपादनों की छाया भी देखने मिलती है । यथा-

१. विणयफलं सूस्सूसा गुरुसुस्सूसाफलं सुयन्नाणं ।
नाणस्स फलं विरई विरइफलं आसवनिरोहो ॥६०७२॥

संवरफलं च सुतवो तवरस्स पुण निज्जरा फलं तीए ।
होइ फलं कम्मखओ तस्स फलं केवलं नाणं ॥६०७३॥

केवलनाणस्स फलं अव्वाबाहो निरामओ मोक्खो ।
तम्हा कम्मखयाणं सव्वेसिं भायणं विणओ ॥६०७४॥

(भु.सुं. पृ. ५५४)

अब यह पाठ 'प्रशमरति प्रकरण (वा. उमास्वाति)' का देखें :

विनयफलं शुश्रूषा गुरुशुश्रूषाफलं श्रुतज्ञानम् ।
ज्ञानस्य फलं विरतिर्विरतिफलं चास्रवनिरोधः ॥७२॥

संवरफलं तपोबलमथ तपसो निर्जरा फलं दृष्टम् ।
तस्मात् क्रियानिवृत्तिः क्रियानिवृत्तेरयोगित्वम् ॥७३॥

योगनिरोधाद् भवसन्ततिक्षयः सन्ततिक्षयान्मोक्षः ।
तस्मात् कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयः ॥७४॥

२. वा उमास्वाति कृत तत्त्वार्थसूत्र-सम्बद्ध अन्तिमोपदेशकारिका में आया हुआ यह श्लोक,-

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मबीजे तथा दग्धे नारोहति भवाङ्कुरः ॥८॥

'भुवनसुन्दरी' की निम्न गाथा में प्रतिध्वनित होता है-

दड्ढंमि जहा बीए परोहइ अंकुरो न पुण जम्हा ।
तह कम्मबीयदाहे न जम्ममरणंकुरा होंति ॥८६४२॥ (पृ. ७८८)

३. एक और भी पद्य है जो मेरी स्मृति के अनुसार श्रीउमास्वातिकृत माना जाता है,-

तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।
तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ? ॥

उसका भी छायानुवाद यहाँ मौजूद है :

तं नाणं पि न भण्णइ रागाई जेण उक्कडा होंति ।
सो कह भन्नइ सूरो विहडावए जो न तिमिरोहं ? ॥५९८०॥
(पृ. ५४५)

४. श्रीहरिभद्रसूरि-रचित 'पञ्चसूत्र' में 'दुक्कडगरिहा', 'सुकडासेवणं', 'रागदोसविसपरममंतो' इत्यादि पदावली प्राप्त होती है । इस कथा की

'जिणधम्मतत्तनाणं दुक्कडगरहा य सुकडसेवा य ।'
'कम्मविसपरममंतो भवविडविच्छेयणकुढारो ।'
(गा. २९२३-२४, पृ. २६७)

इन पंक्तिओं में उस पदावली के अंश पाये जाते हैं ।

५. इस पञ्चसूत्र के चतुर्थ सूत्र में 'व्याधितसुक्रियाज्ञात' नामक दृष्टान्त सोपनय लिखा गया है, जो 'विंशतिविंशिका' में भी मिलता है । इस कथा की ८६२४ से ८६२७ इन गाथाओंमें (पृ. ७८६-८७) यह दृष्टान्त, लगभग, पञ्चसूत्र-वर्णित पदावली में ही, मिलता है, जो बड़ा रोचक है ।

(६)

कितनेक रूढिप्रयोग या लोकोक्तिस्वरूप कहावतों का प्रयोग भी इस ग्रन्थ में किये गये है । जैसे-

१. 'घुणक्खरो नाओ' (गा. ३६०, पृ. ३४)
२. 'नो भज्जइ लउडी न मरइ ससओ' (गा. १३३२, पृ. १२२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. 'केसरि-दोत्तडीनाओ' (गा. २३९७, पृ. २१९)

४. 'फोडावियं च जम्हा बिल्लं बिल्लेण बुद्धीए' (गा. ५६२९, पृ. ५१३)

५. हमारी भाषाओं में एक मुहावरा बहुत प्रसिद्ध है : "करमे-धरमे" 'करमे-धरमे' करना पडा; 'करमे-धरमे' हो गया, इत्यादि । यह मुहावरा यहाँ बार-बार प्रयोजा गया है । यथा-

'कम्मधम्मजोगा' (गा. ३६०, ११९३, १५५८, १७९६, ३०८६, ६७१०, ७७६५ वगैरह) ।

(७)

पृ. ६६८-६९ पर संक्षिप्त किन्तु विविधछन्दोमण्डित वसन्तऋतु-वर्णन (गा. ७३२५-२९) भी द्रष्टव्य है ।

(८)

बहुत सारे विशिष्ट शब्दप्रयोग इस में मिलते हैं, जो अभ्यासियों के लिये रसप्रद है । उदाहरणार्थ :

मन्दिर की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) के परिसर को भ्रमी (भ्रमन्ती) (गुजराती-'भमती' कहते हैं । उसके लिये यहाँ 'भवंतिय' शब्द (गा. ५२६९, पृ. ४८१) का प्रयोग मिलता है । दादरा (सीडी) के लिए 'दद्दर' (गा. ४८४५, पृ. ४४२) का प्रयोग मिलता है । 'भरवसो' शब्द 'भरोसा' के अर्थ में प्राप्त है (५८५१, पृ. ५३४) 'खडप्फडा' का प्रयोग किया गया है (गा. ५८५९, पृ. ५३३) । 'पिंढारा' शब्द हमारे यहाँ यह प्रकारकी ठगजाति के लिये प्रयोजाता जाता है । उसका प्रयोग यहाँ 'पिंडारा' रूप से मिल रहा है (गा. ६६७९, पृ. ६०९) । 'लड्डु' शब्द भी है, जो शायद 'लाड' वाचक है (गा. ८०८३, पृ. ७३७) । ऐसे और भी अनेक शब्दप्रयोग हैं, जो तज्ज्ञों के लिए ध्यानार्ह हैं ।

इन सभी शब्दों की सूचि बनाकर, यह लेख लिखने से पहले, भायाणी साहब को भेजकर उन से इसका विवरण पाने का मैंने सोचा था। किन्तु उनके दुःखद निधन से वह बात मन में ही रह गई ।

अन्य और भी रसप्रद शोध-सामग्री इस बृहत्काय कथाग्रन्थ में उपलब्ध हो सकती है । अभ्यासियों उसे प्रकाश में लाए ऐसी अभ्यर्थना।

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरङ्गवती कथा तथा पादलिप्तसूरिः जैन के अजैन ?

विजयशीलचन्द्रसूरि

तरङ्गवती-तरङ्गलोला-कथा ए प्राकृत भाषासाहित्यनुं एक अणमोल रत्न छे. श्रीपादलिप्तसूरि नामे जैनाचार्यनी आ रचना भारतीय साहित्यजगतमां तो सुख्यात हती ज, पण छेल्ला बे सैकामां ते विश्वख्यात पण बनी छे. तरङ्गवतीनी मूल सुविस्तृत कथा आ. पादलिप्तसूरिनी रचना छे, जेने विद्वानो इस्वीसननी आरम्भनी[१] सदीओमां थयेल सर्जन गणावे छे. पण वखत जतां ते मूल कथा लुप्तप्राय थई छे, अने तेनो, आ. नेमिचन्द्रसूरिकृत, 'संखित्ततरंगवईकहा'ना नामे संक्षेप उपलब्ध थाय छे. आ संक्षेप सम्भवतः १० मी सदीनो मनाय छे.[२] आ बन्ने कथाओ विषे घणुं लखाई चूक्युं छे; डॉ. हरिवल्लभ भायाणीए आना सानुवाद-सम्पादनमां घणां तारणो आप्यां छे, जे अधिकृत गणाय तेवां छे.

ताजेतरमां प्रा. नरोत्तम पलाणे पोताना एक लेखमां एवुं प्रतिपादन करवानो प्रयास कर्यो छे के तरङ्गवती ए मूळे जैनेतर (चारणी?) परम्परानी कथा-रचना छे, ए रीते ते जैनेतर रचना छे, अने पाछळथी तेने कोई जैन साधुए जैन कथामां फेरवी नाखी छे.

'गुजरातनी प्रथम प्राकृतकथा अने कविता' शीर्षकना, प्रा. कानजी पटेल अभिनन्दन ग्रन्थ (सं. गौतम पटेल वगेरे, ई. २००५, अमदावाद) मां प्रकाशित, पोताना ए लेखमां श्रीपलाणे चर्चेला मुद्दा आ प्रकारना छे :

"मूळनी संख्याबंध लौकिक कथाओ धर्मप्रचारको द्वारा पोतपोताना धर्मनुं स्वरूप पामी छे. जैन... अने बौद्ध कथाकारो एमना धर्मसिद्धान्त मुजब शृङ्गार के वीरनो (युद्धनो) अनुभव धरावता न होय ते स्वाभाविक ज छे, आम छतांय जैनबौद्ध कथाओमां युद्धवर्णन अने शृङ्गारवर्णन आवेल छे ते मूळनी लौकिक कथाओ परिवर्तन पामी होवानुं सूचन करे छे. गुजरातमां सर्जायेली प्रथम प्राकृतकथा तरङ्गवती सन्दर्भे पण आम बन्यानुं अनुमान छे. पादलिप्त रचित मूळनी तरङ्गवती कथा हाल प्राप्त नथी, परन्तु तरङ्गवतीना आधारे कोई जैन आचार्य द्वारा सर्जन पामेली तरङ्गलोला नामनी कथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध छे. एम लागे छे के समये समये मूळनी कथामां सुधारावधारा थया कर्या हशे अने जैन कथाकारोना अति मानीता घटकतत्त्व एवा 'पुनर्जन्म'नी गूंथणी पण एमां थई गई हशे. कथामां ज नहि, लेखक-नाममां पण 'आचार्य' अने 'सूरिजी' वणाई आव्या हशे ! के. ह. ध्रुव जणावे छे के तरङ्गवतीनो कर्ता पालित किंवा श्रीपालित मारी समजमां जैनेतर ठरे छे, केमके ८मा शतकना हरिभद्रसूरिनी 'शिष्यहिता' नामे बृहद्वृत्तिमां ''इतरलोके निर्दिष्टवशाद् वासवदत्ता तरङ्गवती इत्यादि'' मुजब आ कथानो समावेश जैनेतर साहित्यमां कर्यो छे. ... के.ह.ध्रुव प्रमाण आपतां नोंधे छे के नेमिचन्द्र गणिना यश नामना शिष्ये तरङ्गलोला एवुं नाम राखी जैनी दीक्षा आपी.' (पद्यरचनानी ऐतिहासिक आलोचना' पृ. १७७)''

प्रा. पलाणनां अन्य विधानो पण आ ज लेखमां छे, ते जोई लईए : ''वलभीभंग पूर्वे जे लौकिक कथा छे, वलभीभंग उत्तरे जैन कथा बने छे.'' ''....जैन संस्करणनी उत्तर मर्यादा १५मी सदी सुधीनी आंकी शकाय छे.'' ''...पादलिप्त अने नागार्जुननी कथाना अंशो पाछळनो उमेरो समजवो जोईए.'' ''मूळनी कथानुं ई.स.नी ८मी सदी पछी जैन संस्करण थयुं हशे अने क्रमशः आजनुं स्वरूप बंधातां ५००-७०० वर्ष लाग्यां हशे.''

★

प्रा. पलाणना उक्त लेखनां तारणो आटलां तारवी शकाय :

१. पादलिप्त जैन कवि/सूरि नहोता; जैनेतर हता, तेमने पछीना जैन संक्षेपकारे जैन कवि बनावी दई तेमना नाम साथे आचार्य व. पदवाचक शब्दो गोठवी दीधा छे.

२. पोताना आ निरीक्षणमां तेमने के. ह. ध्रुवनो टेको मळे छे.

३. 'तरङ्गवती' ए जैन कथा नथी. मूलतः ते अजैन अथवा लौकिक कथा छे. पाछळथी तेने जैन कथानुं रूप अपायुं छे, अने तेमां ५००-७०० वर्षोमां, सम्भवतः छेक १५मी सदी सुधीमां अनेक प्रक्षेपो थतां रह्या छे.

४. जैन साधुओ विरागी-वीतरागी होई शृङ्गार अने वीररसनी वातोथी तेओ साव अनभिज्ञ ज होय, अेथी तेनुं वर्णन के प्रतिपादन करवानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्यिक क्षमता तेओ पासे न ज होय. प्रस्तुत कथामां तो ते बे रसोनुं वर्णन छे, ते परथी पण आ कथा जैनेतर होवानुं फलित थाय छे.

५. आ. हरिभद्रे पण शिष्यहिता टीकामां आ कथाने इतर (जैनेतर) कथा तरीके वर्णवी छे.

६. जैन पादलिप्त अने नागार्जुननो सम्बन्ध पण काल्पनिक लागे छे.

★

हवे आ तारणो तथा विधानो विषे विमर्श करीए :

१. पादलिप्त ए जैन आचार्य छे अने तरङ्गवती ए तेमनी रचना छे, एवुं डो. भायाणीए पोताना 'अनुलेख'[३] मां स्पष्ट प्रतिपादन कर्युं छे. कवि जो अजैन होत, अथवा कथा जैनेतर के लौकिक रचना होवानुं लाग्युं होत, तो भायाणी जेवा विद्वाने प्रबन्धो के प्रबन्धकारोनी शेहमां तणाईने कर्ता तथा कथाने 'जैन' लेखे स्वीकारीने वात करी न होत. अने तेमनी वात, पूर्वधारणा के पूर्वग्रह विहोणी होईने जैनोए सहेजे स्वीकारी पण होत.

२. तरङ्गवतीनो रचनाकाळ ई.स. नी आरम्भनी[४] सदीओ होवानुं पण भायाणीए स्थापी आप्युं छे.

३. तरङ्गवती ए जैनेतर रचना छे अने तेनो संक्षेप ते तेनुं जैन संस्करण छे, एवा विधाननी सामे डो. भायाणीनो आ फकरो वांचीए :[५]

"..... संक्षेपकारे स्पष्ट कह्युं छे के तेणे पादलिप्तनी मूळगाथाओमांथी पोतानी दृष्टिअे गाथाओ वीणी लईने ते कथाने संक्षिप्त करी छे.... आनो अर्थ ए थयो के सं. तरं. मां जे गाथाओ आपेली छे ते घणुं खरुं तो शब्दशः मूळ तरङ्गवतीनी गाथाओ ज छे.... एटले सं. तरं. नी घणी खरी गाथाओने आपणे पादलिप्तनी रचना तरीके लई शकीए.

"आ वस्तुनुं असन्दिग्ध समर्थन ए हकीकतथी थाय छे के भद्रेश्वरे 'कहावली'मां तरङ्गवतीनो जे ४२५ गाथा जेटलो संक्षेप आपेलो छे तेनी आशरे २५५ गाथाओ (६० टका) सं. तरं.नी गाथाओ साथे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दशः साम्य धरावे छे. अने भ.तरं.नी बाकीनी घणीखरी गाथाओ पण सं. तरं मां आंशिक साम्य साथे मळे छे.... विषय, सन्दर्भ वगेरे जोतां ए अंश भद्रेश्वरे करेलो उमेरो नहि, परंतु मूळ कृतिमांथी ज लीधेलो होवानुं दर्शावी शकाय तेम छे. आथी सं. तरं अने भ.तरं. वच्चे जेटली गाथाओ समान छे.... ते असन्दिग्धपणे पादलिप्तनी ज छे, अने ते उपरांत सं. तरं.नी बाकीनी पण मोटा भागनी गाथाओने पादलिप्तनी रचना गणवामां कशो दोष जणातो नथी."

४. तरङ्गवती-संक्षेपना रचनाकार तथा तेना काळ अंगे भायाणीनी नोंध जुओ : "अने जो अर्थ एवो घटावीए के संक्षेपनी आ प्रति वीरभद्रसूरिना शिष्य नेमिचन्द्रगणीने माटे जस नामना लहियाए लखी छे (एटले के आ गाथा पण लहियानी रचेली छे) तो ए अर्थघटन व्याकरण अने वाक्यरचना साथे सुसंगत छे. आ वात स्वीकार्य लागे तो सं.त.नो कर्ता अज्ञात होवानुं मानवुं पडशे.

"सं.त.ना समय बाबत पण कशुं निश्चितपणे कही शकाय तेम नथी. अन्ते जेनो निर्देश छे ते नेमिचन्द्र अने धनपालकृत 'उसभपंचासिया' परनी अवचूरिना कर्ता नेमिचन्द्र ए बन्ने जो एकज होय तो सं.त.ने दसमी शताब्दीना अन्त पहेलां मूकी शकाय. संक्षेप प्राकृतमां ज छे ते हकीकत पण मुकाबले तेना वहेला समयनी समर्थक छे... सं.तरं.नी हस्तप्रतमां ९ मा पत्रना पहेला पाने (गा. २३१)... इ वर्ण ११-१२मी शताब्दीनी देवनागरीनी जेम उपर बे मींडां अने नीचे नानी लकीर-एवा रूपे लखायेलो छे ते पण सूचवे छे के ए प्रतिना आधार तरीके बारमी शताब्दी लगभगनी कोई प्रत होवी जोईए."[६]

डो. भायाणीनी उपर उद्धरेली नोंधो परथी प्रा. पलाणनां विधानो आपोआप असंगत पुरवार थाय छे, ते हवे कहेवानुं न होय.

५. जैन साधु शृङ्गार/वीर रसना अनभिज्ञ होय, अने तेथी तेनुं वर्णन करवामां तेओ अक्षम होय, एवुं प्रा. पलाणनुं तारण, जैन रचनाकारोना सम्पूर्ण जीवन-कवननी तेमनी अनभिज्ञता ज पुरवार करे छे. जैन साधुओ द्वारा थयेल आ बे रसोनुं उत्कृष्ट निरूपण पौराणिक तेमज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्यकालीन अनेक रचनाओमां उपलब्ध छे. रसोनुं निरूपण कर्या पछी तेनुं पर्यवसान वीतरागतामां-विरागमां लाववुं, ए जैन रचनाकारोनो विशेष जरूर छे. पण तेनो अर्थ तेओ आना निरूपणमां अक्षम छे एम करवो, अने तेटला मात्रथी ज पादलिप्तने जैनेतर मानवा ते तो हास्यास्पद कल्पना छे.

६. शिष्यहिता वृत्ति कया सूत्र परनी ? ते ध्रुवसाहेबे नोंध्युं नथी. सम्भवतः दशवैकालिकसूत्र परनी टीका तेमना मनमां (के समक्ष) होवी जोईए.

प्रथम तो तेमणे नोंधेल वाक्य आ टीकामां छे ज नहि. तेमणे अन्यत्र कशे वांच्युं पण होय तो पण ते वाक्य अधूरुं छे.

दशवै० परनी शिष्यहिता वृत्तिमां तरङ्गवतीनो उल्लेख आ प्रमाणे छे :

"लोके रामायणादिषु, वेदे यज्ञक्रियादिषु, समये तरङ्ग-वत्यादिषु" ॥ (पत्र ११४).

मिश्रकथा (धर्म-अर्थ-काम व.नां मिश्रणवाळी कथा) ना वर्णनमां निर्युक्तिकारे जे त्रण प्रकार पाडी आपेल छे, तेनां दृष्टान्त आपतां आ. हरिभद्रसूरि नोंधे छे के-

लोक (लौकिक)मां रामायण वगेरेमां; वेदोमां यज्ञक्रिया आदिमां; अने समय एटले जैनधर्म-परम्परामां तरङ्गवती वगेरेमां (मिश्रकथा) जाणवी.

आ ज वात दशवै० परनी [७]चूर्णिमां पण ए ज प्रमाणे वर्णवाई छे. याद रहे के चूर्णिकार हरिभद्रसूरिना पुरोगामी छे.

७. पादलिप्त तथा नागार्जुननो सम्बन्ध काल्पनिक होय तो पण ते वात जैन प्रबन्धो-प्रमाणे प्रचलित छे. प्रबन्धोमां इतिहास-अनुश्रुतिनुं सम्मिश्रण तो होय ज. परन्तु आ बन्ने पात्रो तो ऐतिहासिक छे, एमां शंका नथी. हवे बन्ने वच्चे सम्बन्ध हतो के केम, अने सम्बन्धनी वात ऐतिहासिक छे के केम, ते नक्की करवानुं काम तो तज्ज्ञोनुं छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. सार ए के तरङ्गवती जैन मुनिनी ज रचना छे. पादलिप्त ए एक जैनाचार्यनुं ज नाम छे. तेओ चारण ज्ञातिना नहोता, के तेमणे चारण कविओनी रचना पोताना नामे पण चडावी नहोती. फरी कहीश के चारण कविओ प्रत्येना पक्षपातथी दोराईने जैन कविओ तथा काव्योने खोटां ठरावvां, ते कांई विद्वज्जनोचित न गणाय, अने एवी रीते कर्याथी चारण कविओनी महत्ता वधी जाय एम पण मनाय नहि. कविनी महत्ता तेनी रचनाथी ज पुरवार करी शकाय, ए वात हमेशां याद राखवी जोईए.

पादटीप

१. संखित्त तरंगवई कहा, सं. डॉ. हरिवल्लभ भायाणी, L.D. Series 75, ई.स. 1979, अमदावाद, पृ. २७९
२. ए ज, पृ. २८५
३. ए ज, पृ. २७५
४. ए ज, पृ. २७९
५. ए ज, पृ. १७९
६. ए ज, पृ. २८५
७. दसकालियसुत्तं – णिज्जुति चुण्णिसंजुयं, सं. मुनि पुण्यविजयजी, PTS. ई. १९७२, (रिप्रिन्टः २००३), पृ. ५८

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वाध्याय

विशेषावश्यक भाष्यनुं शुद्धिपत्रक (३)

(नोंध : विशेषा०भाष्यनी बे आवृत्ति मुद्रित छे. एक आवृत्ति पूज्य सागरजी महाराजे सम्पादित छे - प्रायः, तेनी बीजी आवृत्ति दिव्यदर्शन ट्रस्टे चोपडारूपे बे भागमां छपावी छे. तथा अन्य आवृत्ति मुनि राजेन्द्रविजयजी द्वारा सम्पादित, बाई समरथ जैन श्वे. मू. ज्ञानोद्धार ट्रस्टे (अमदावाद) छपावेल छे. ते प्रति पूज्य श्रीचतुरविजयजी महाराजे संशोधेली छे. ते प्रतिना आधारे तथा वांचन वेळाए सहेजे जणायुं ते प्रमाणे आ पाठान्तरो तथा शुद्धिपत्र तैयार थयेल छे. आना बे अंश अगाऊ अनुसन्धानना अंकोमां छपायेल छे. तेनो त्रीजो अंश अत्रे आपेल छे.)

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३५	२२	कउवियारो०	कउ वियारो
३३५	३४	०पच्छामो	०पगच्छामो
३४२	१०	०घण्णो	०घणो
३४२	१५	उद्यत	उत्पद्यत
३४४	२०	०भ्रान्तर०	०भ्रातर०
३४६	२८	०त्तताओ	०त्तत्ताओ
३४७	५	दिट्ठफ०	दिट्ठप्फ०
३४७	२७	ते अपय०	तेऽपय०
३४८	३०	यस्य यस्य	यद् यत्
३४८	३८	०मिवोदाह०	०मिवाह०
३४८	४१	०मिवोदाह०	०मिवाह०
३५०	७	विप्पमु०	विमु०
३५०	१८	विप्रमु०	विमु०
३५०	३३	अथ मूर्त्त०	अथाऽमूर्त्त०
३५२	३१	एवेददम्	एवेदम्
३५२	३५	आत्मा प्रति०	आत्मा सुप्रति०
३५२	३७	इत्यादिविधि०	इत्यादिर्विधि०
३५३	८	जरा-म०	जर-म०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५३	१२	आगच्छइ	आगच्छई
३५३	१२	वच्चामि	वच्चामी
३५५	८	तेजो वाय्व०	तेजोवाय्व०
३५६	२१	०ज्ञानन्द्रि०	०ज्ञानेन्द्रि०
३५८	३६	सविषया०	सविसया०
३५९	५	वोद्धुं	बोद्धुं
३५९	११	मृत इवाहस्मि	मृत इवाऽहमस्मि
३५९	११	मृत इवाहस्मि	मृतवानहमस्मि इति पाठान्तरम्
३५९	१७	वासणा उ	वासणाओ
३५९	१७	वासित्त	वासित
३६०	१८	०लद्धि उ	०लद्धिओ
३६०	१७	०विकर्षाद्	०विप्रकर्षाद्
३६०	३७	०पिशादी०	०पिशाचादी०
३६१	१४	जिणेणं जरा०	जिणेण जर०
३६३	११	विष्वग् भा०	विष्वग्भा०
३६४	२९	ननुकिं०	॥१७०२॥ ननु किं०
३६४	३१	०या-ऽणूया	०या-ऽणूवा(?)
३६४	३३	प्रियतमा०	वैभवप्रियतमा०
३६५	८	सोत्ताइयाइं	सोत्ताईयाइं
३६६	१७	दीहम्मि	दीहंति इति पाठान्तरम्
३६६	२२	दीर्घेन ज्ञाना	दीर्घज्ञाना०
३६६	२३	हस्सम्मि	हस्संति इति पाठान्तरम्
३६६	३८	०ऽन्यापेक्षाः	०ऽन्याऽनपेक्षाः
३६७	१२	तहं वव०	नहं च वव०
३६९	३	०था जात०	०था न जात०
३७०	३०	मूर्त्तैरणु०	मूर्तोऽणु०
३७१	४	देस०	दिस्स०
३७१	१९	देश०	दृश्य०
३७२	१०	अपच्च०	अप्पच्च०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७२	२८	-रिसणाईणं	०रिसईणं
३७३	२३	वृत्ति०	वृति०
३७४	३२	०णा हिंस्रः	०णाऽहिंस्रः
३७४	३४	घन्न०	घ्नन्न०
३७५	७	बाह्यास०	बाह्यस०
३७५	२७	जरा०	जर०
३७५	३१	सुहुम	सुहम्म
३७६	१४	०लोमाभ्यां	०लोमभ्यां
३७७	७	तो सरि०	तोऽसरि०
३७७	११	ननु	न तु
३७७	१८	ततः सदृ०	ततोऽसदृ०
३७९	५	भवत्स्व०	भवन्स्व०
३८०	२२	जरा०	जर०
३८०	२६	आगच्छइ	आगच्छई
३८१	२५	होज्ज स	होज्ज व स
३८२	६	०मोक्खा	०मोक्ख
३८३	२४	होउ जइ	होउ व जइ
३८५	२७	प्रयत्नानन्त०	प्रयत्ननान्त
३८६	१८	इत्यश्च	इतश्च
३८७	५	लाउ य	लाउय
३८९	११	लाउ य	लाउय
३८९	१४	निच्चथा०	निच्चत्था०
३८९	२६	नियम्मि	नेयम्मि
३८९	३४	नहिवै	नहवै
३९३	१३	यद्यपि	यदपि
३९४	१३	सपच्च०	सयपच्च०
३९५	२४	प्रत्यक्ष०	अप्रत्यक्ष०
३९७	२२	रागवृद्धिः	रोगवृद्धिः
३९७	२३	सुख०	दुःख०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९७	३६	जउ	जइ
३९९	३३	फलभेदओ	फलभेओ
४००	५	मूर्तत्वेन	मूर्तेन(?)
४०१	१०	दुःखयोः	सुखदुःखयोः
४०२	८	०काले पु०	०काले तु-बन्धकाले पु०
४०३	१	साइय०	साईय०
४०५	१५	नास्त्यवा	नास्ति भवा०
४०५	२४	कथम्भूतस्यो०	कथम्भूतस्य ? उ०
४०५	२७	परकोल०	परलोक०
४०८	२१	अथका०	अथैका०
४११	१६	वायाव्यदयः	वायव्यादयः
४११	३८	स्वच्छस्य	स्वस्थस्य(?)
४१२	१६	अमूर्त०	मूर्त०
४१२	१८	०त्वाप्रा०	०त्वावा०
४१३	२५	०कुटकु०	०कटकु०
४१६	२६	०रीरग्ग०	०रीरग०
४१७	३३	नाणाऽबा०	नाणाऽणाबा०
४१९	२५	अहाउ य	अहाउय
४२०	१५	भव्वा-ऽभव्वा	भव्व-ऽभव्वा
४२२	३५	भाष्कारः	भाष्यकारः
४२४	३४	०द्वरेण	द्वारेण
४२५	१६	०भवओ कया०	०भवओऽकया०
४२५	२०	०भवतः कृता०	०भवतोऽकृता०
४२७	३१	यावाङ्गणे	या चाऽङ्गणे
४२८	१२	पसईओ	पसई
४२९	२४	अहाउ य	अहाउय
४३०	३४	अहाउ य	अहाउय
४३०	३६	अहाउ य	अहाउय
४३१	२३	वस्त्रम०	वज्रम०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३२	४	द्रव्ये	द्रव्यं
४३३	२६	विसेसा०	सेसा
४३३	३८	विशेषा	शेषा
४३४	३७	मेगंते	मेगत्ते
४३५	१६	०रिक्तो त०	रिक्तोऽत०
४३५	३१	०मवाई	०मवाई
४३६	८	सगुणा व्व	सगुण व्व
४३६	२२	तन्त्वादि०	तन्त्वादेः
४३७	३	काऽसौ क्रिया कुम्भं प्रति ?	काऽसौ ? क्रिया, कुम्भं प्रति
४४०	१७	सामाइया०	सामइया०
४४३	१४	सामान्यरूपो	सामान्यरूपा
४४५	३४	विपक्ष०	स्वविपक्ष०
४४६	१	वत्थुं न भावो	वत्थुनभावो
४४६	१८	वस्तु न भावः	वस्तुनभावः
४४६	३०	येनैव भा०	येनैव[रूपेण]भा०
४४७	२०	ओदईओ	ओदइओ
४४८	३०	वत्थुओ	वत्थूओ
४४९	२४	०भूतस्ता०	०भूतास्ता०
४५०	७	०दशाती०	०देशाती०
४५०	१०	भिन्ना, एतेन	भिन्ना एते न
४५०	११	यथाभूता	तथाभूता
४५१	२३	०गयत्तओ	०गयन्नत्तओ
४५०	३७	०गतत्वतः	०गतान्यत्वतः
४५३	१३	व वहीरए	ववहीरए
४५३	१५	अयं च... ॥२२१२॥	॥२२१२॥ अयं च...किन्तु 'वच्चइ०
४५४	२७	उज्जं	उज्जुं
४५४	२८	'उज्जं'	'उज्जुं'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५४	३२	ऋजुः	ऋजु
४५६	३६	सद्धो	सद्दो
४५७	३०	०शब्दात्	शब्दान्
४५७	३०	०शब्दादिव	शब्दानिव
४५८	३०	०णसिद्धं	०णमिट्ठं
४५८	३९	०णसिद्धं	०णमिष्टं
४५९	९	पुनंस्त०	पुनस्त०
४५९	३२	तदन्न०	तहन्न० इति पाठान्तरम्
४६०	५	अर्थस्तु	अर्थन्तु
४६०	२९	०रजीवो	०रज्जीवो
४६०	२९	जीवप०	जीवणप० इति पाठान्तरम्
४६०	३७	०त्तमाण०	०त्तमण०
४६१	१२	०नो देशीति	नोदेशीति
४६१	१५	'नो देशी'	'नोदेशी'
४६२	१५	०रास्तेऽपीहा०	रास्ते सर्वेऽपि नयास्तेऽपीहा०
४६२	३५	०त्वकराणे०	०त्वकारणे०
४६३	१४	०स्तपर्याया	०स्ताः पर्याया
४६३	२४	०रन्नाव०	०रन्नाव०
४६३	२४	०शार्नहम०	०शानर्हम०
४६३	२८	०मुहतए	०मुहे नए
४६३	३१	०न्योन्य०	०न्यान्या०
४६३	३२	सयया०	समया०
४६३	३९	०मुखतया	०मुखान् नयान्
४६४	१	वान्य०	वाज्ञ०
४६४	७	०हणाए	०हणा य
४६४	१८	०थनायाम्	०थना च

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्रचर्चा

षड्भाषाबद्ध चन्द्रप्रभस्तव के कर्त्ता जिनप्रभसूरि हैं।

म. विनयसागर

अनुसन्धान अंक ३३ पृष्ठ २० पर मुनि **श्री कल्याणकीर्तिविजयजीका** जिनभक्तिमय विविध गेय रचनाओं शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है । इस लेख में पृष्ठ २५-२६ पर चन्द्रप्रभस्तव प्रकाशित है । यह स्तोत्र छः भाषाओं-संस्कृत, प्राकृत, शूरसेनी, मागधी, पैशाचिकी, चूलिका पैशाचिकी, अपभ्रंश और समसंस्कृत प्राकृत भाषा में गुम्फित है । प्रत्येक भाषा में दो-दो-पद्य है और अन्तिम पद्य घत्ता छन्द में है । इस कृति के कर्त्ता के सम्बन्ध में लेखक ने पृष्ठ-२० पर लिखा है- **कर्त्तानो कोई उल्लेख नथी** अर्थात् कर्त्ता का कोई उल्लेख नहीं है । इस सम्बन्ध में ज्ञातव्य है :-

१. **प्रकरण रत्नाकर भाग-२** जो कि पण्डित भीमसिंह माणेक ने बम्बई से सन् १८७६ में प्रकाशित किया है । उसके पृष्ठ ३६९ पर यह स्तोत्र प्रकाशित हुआ है । इस स्तोत्र के अन्त में लिखा है- **इति श्री जिनप्रभसूरिकृतचन्द्रप्रभस्वामिसत्कं षड्भाषास्तवनं सम्पूर्णम् ।**

२. **विधि मार्ग प्रपा**, जिनप्रभसूरि कृत की भूमिका में अगरचन्द भँवरलाल नाहटा ने पृष्ठ-१८ पर स्तुति-स्तोत्रादि कि सूची देते हुए षड्भाषामय चन्द्रप्रभ जिनस्तुति (नमो महासेननरेन्द्रतनुज) गाथा-१३ जिनप्रभसूरि का ही माना है ।

३. मैंने (विनयसागर)भी **शासनप्रभावक आचार्य जिनप्रभ और उनका साहित्य** पुस्तक के पृष्ठ-९९ पर जिनप्रभसूरि की ही कृति माना है।

आचार्य जिनप्रभसूरि १४वीं-१५वीं शताब्दी के प्रभावक आचार्यों एवं असाधारण विद्वानों में से हैं । ये खरतरगच्छकी लघुखरतर शाखा के द्वितीय जिनेश्वरसूरि के पौत्र शिष्य और जिनसिंहसूरि के शिष्य है । भारत के तुगलक शाखा के सम्राटों में मोहम्मद तुगलक के ये प्रतिबोधक भी हैं। प्राकृत और संस्कृत साहित्य के ये प्रौढ़ मनीषियों मे से थे । इनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा निर्मित असाधारण कृतियों में **विविध तीर्थकल्प, विधि मार्ग प्रपा और द्व्याश्रय महाकाव्य** (कातन्त्र व्याकरण के सूत्र और श्रेणिक चरित्र) है । ये माँ पद्मावती के साधक थे । इनके चमत्कारों का वर्णन तपागच्छीय शुभशीलगणि कृत पञ्चशतीकथाप्रबन्ध और सोमधर्मगणि कृत उपदेश सप्ततिका में प्राप्त होते हैं । इनके द्वारा लगभग ७०० स्तोत्रों का निर्माण हुआ था और कथानकों के अनुसार ५०० स्तोत्र तपागच्छ के आचार्य सोमप्रभसूरि को समर्पित किए थे । इनके रचित स्तोत्रों में से लगभग ८० स्तोत्र प्राप्त होते हैं । इन स्तोत्रों में से कई स्तोत्र अष्टभाषामय, षड्भाषामय, पारसी भाषामय भी प्राप्त होते हैं । इनके उत्कट वैदुष्य को देखते हुए इस स्तोत्र के कर्त्ता भी जिनप्रभसूरि हो सकते है ।

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की लेखन-परम्परा में कई स्तोत्रकारों ने अपना नाम श्लेषालङ्कार में, चित्र काव्य में और नाम के पर्यायवाची शब्दों में अथवा आद्यन्त के रूप में भी प्रदान किए हैं । साथ ही कई कृतियों में प्रणेता का नाम न होने पर भी तत्कालीन आचार्यों एवं प्रतिलिपिकारों द्वारा उस आचार्य की कृति को श्रद्धा के साथ मानते हुए अन्त में कृतिरियं श्री जिन...सूरीणां लिखते हैं । इसी प्रकार इस कृति में प्रणेता का नाम न होने पर भी कृतिरियं श्री जिनप्रभसूरीणां लिखा हो और उसी के आधार से उन्हीं की यह कृति मानी जाती हो, अतः यह कृति जिनप्रभसूरि की मानने में कोई आपत्ति नहीं है ।

पद्य १२ दूसरे चरण में अबलकर-भु(भू)रुहकुंजर के स्थान पर सबलकलिभूरुहकुञ्जर और चतुर्थ चरण में मम भूरुहकुंजर (?) के स्थान पर मम केवलिकुञ्जर प्राप्त है ।

दिनाङ्क
२९-९-०५

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहंगावलोकन-३३

उपा. भुवनचन्द्र

तेत्रीसमा अंकना अलंकार समी बे विशिष्ट रचनाओ छे. उपाध्यायप्रवर श्री यशोविजयजीनी गणिअवस्था दरम्यान रचायेल श्री सुविधिपार्श्व जिनस्तव (जे अपूर्ण प्राप्त थइ छे) अने श्री शंखेश्वरपार्श्वजिनस्तुति अने ए सम्पादित थई छे. संशोधनप्रिय ज नहि, पण संशोधनभक्त एवा मुनि श्री धुरंधरविजयजी द्वारा. कृतिओनी विशिष्टता अनेक रीते छे : १. बन्ने अद्यावधि अप्रगट रचनाओ छे. २. उपाध्यायजीना गुरुना हाथे लखायेली छे. ३. बन्ने कृतिओ पूर्वर्षिरचित अन्य कृतिओनी अनुकृति छे. ४. सम्भवतः उपाध्यायजी म.ना साहित्यसर्जनना प्रारम्भकाळनी रचनाओ जणाय छे.

प्राकृत छन्दो अने अपभ्रंशकालीन छन्दोमां पण उपाध्यायजी म.नी लेखिनी अनवरुद्ध रूपे वहेती अहीं जोवा मळे छे. प्रत्येक अभ्यासीए उपाध्यायजी म.नी सर्वतन्त्र स्वतन्त्र प्रतिभाना एक अलग आयामना दर्शन माटे पण आ रचनाओ वांची जवी जोइए, दुर्भाग्य एटलुंज छे के 'अजित-शान्तिस्तोत्र'ना अनुकरण रूपे रचित 'सुविधि-पार्श्वस्तव'ना अन्तिम ९ श्लोको ज सम्पादक मुनिवरने हाथ लाग्या छे. बाकीना श्लोकोनां पानां पण आ ज रीते संशोधनलब्धवर एवा सम्पादक मुनिवरने हाथ चढे एवा सुखद योगानुयोगनी कामना मनमां थई आवे.

पृ. ५, श्लोक. १६ : 'संखेसरपासणाह !' एवुं संबोधन नहीं, पण 'संखेसरपासणाह समरण...' एवुं सामासिक पद आ स्थळे योग्य गणाशे.

पृ. ६, श्लो. २० : 'विरविज्जुईइ' छे त्यां 'तिमिराइं व रविज्जुईइ' एवो पाठ वधु संगत बने.

म. विनयसागरजी द्वारा बे सम्पादनो तथा बे चर्चापत्र आ अंकमां सामेल छे. वृद्धवये पण संशोधन-सम्पादननी प्रवृत्ति तेओ करता ज रहे छे ए आपणा माटे आनन्दनी वात छे. जयशेखर लिखित विज्ञप्तिलेख प्रमाणमां अर्वाचीन छे, परंतु जैन श्रमणोमां साहित्य दैनिक/सामाजिक कार्यक्रमोमां केटलुं ओतप्रोत हतुं तेनुं दर्शन करावी जाय छे. सम्पादकीयमां जणाव्युं छे तेम, वि.सं. १४४१मां लखायेलो विज्ञप्ति लेख मळे छे. प्रस्तुत पत्र १८९७ मां लखायो छे. विज्ञप्तिलेखनी परिपाटी पांचसो वर्ष सुधी तो प्रचलित रही हशे एवुं कहेवामां वांधो नथी.

मुनिश्री कल्याणकीर्तिविजयजीए विविध गेय रचनाओ सम्पादित करी छे. 'आदिनाथ स्तोत्र' श्लो. १मां 'रिसह!' एवुं सम्बोधनरूप उचित बने' श्लोक ४मां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'इग्यारसी' एवो पाठ अपभ्रंशनो न होइ शके. 'नेमिनाथस्तोत्र' श्लो. १मां 'चरीयत्रिज्जइ' छे त्यां 'नेमिचरीय(व)त्रिज्जइ' होइ शके. श्लो. ३ मां 'कुल तसुण' छे त्यां 'कुलतरणि' जेवो शब्द विचारी शकाय. श्लो. ४ मां 'रायमह' नहि, 'रायमई' होवुं जोइए. 'पार्श्वनाथस्तोत्र'मां श्लो. ३मां 'जम्मुत्सवो' त्यां (जम्मुस्सवो) एम सुधारेलो पाठ कौंसमां आपवो जोइए. 'महावीर स्तोत्र'मां श्लो. ४मां 'वालंभ' शब्द छे. तेनुं मूळ 'वल्लभ' शब्द छे, अने 'वालम' रूपे गुजरातीमां ऊतरी आव्यो छे. वचगाळानुं रूप 'वालंभ' अहीं जोवा मळे छे, ते भाषाशास्त्रीओ माटे रसप्रद बनशे.

महाकवि मेघविजयगणि विरचित 'सेवालेख' पण विज्ञप्तिपत्र छे. कर्ताना साहित्यजीवनना प्रारंभकाळनी आ रचना होय तो १७मा शतकनो अंतभाग आनो रचनासमय गणी शकाय. संस्कृत अने साहित्य श्रमणसंघमां केवा आत्मसात् थइ गयां हतां तेनुं नेत्रदीपक दर्शन आवां पत्रो करावे छे. चालती कलमे लखायेली आ लघुकाव्य समी रचनामां उत्प्रेक्षा-उपमा जेवा अर्थालंकारो अने वर्णानुप्रास जेवा शब्दालंकारो छूटे हाथे जाणे वेरायां छे. अनायास रचाइ जता प्रासना नमूना जरा जोइए : 'श्चिराय रोचिः शुचि संचिनोति' ९१६), 'नष्ठोऽष्टः समतिष्ट दिष्टा०' (२), 'त्वत्सेवया नर्मदया दयालो (१६५), १८८मो श्लोक ध्वनिओना पुनरावर्तनथी केवो कर्णमधुर बन्यो छे ते तो तेनुं गान कराय त्यारे ज समजाय.

समर्थ कविओ नवा शब्दोना स्रष्टा बनता होय छे. कविवर मेघविजयजीनी कलमे एक एवो नवो शब्द सर्ज्यो छे : स्वाधीयते (१२९). 'स्व' अहीं उपसर्ग तरीके आव्यो छे ने 'स्वाध्याय करवो' एवा अर्थनो नवो धातु जन्म पाम्यो छे. '[१]पृथुक' (१५४) =पौंआ होवानुं समजाय छे. आ बन्ने शब्दो अन्यत्र जोवा मळ्या छे के केम ते विषे सम्पादक अथवा अन्य कोई विद्वान् प्रकाश पाडे एवी अपेक्षा.

केटलांक शुद्धिस्थानो :

श्लो. ४४	अनेकशोभासुर संभू (?)तानि	अनेकशोभाभर संभृतानि
श्लो. ६७	द्वीं...	द्वीपस्य
श्लो. ६८	—	पाठ त्रुटित नथी, श्लोक पूरो छे.
श्लो. ६९	पुरावनीपौरा०	पुरावनीपो, राभेय०
श्लो. ७४	सु —नोपकारं	स्युः सुजनोपकार०

१. पृथुक ए पहुंआ अर्थमां प्रयोजातो रह्यो छे. 'पृथुकः स्याच्चिपिटकः' एवुं अमरकोष पण प्रमाणे छे. (चिपिटक-चीवडो =चेवडो).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लो. ८५	०सिद्धि	०सिद्धिः
श्लो. ९३	वैश्रयणा०	वै श्रमणा०
श्लो. ११०	०मध्येन नु	मध्ये ननु
श्लो. १६१	रेजो (जे?)	रजो
श्लो. १६९	स (सु) नमसाध्य(?)	सुनर्मसाध्यं
श्लो. १७९	मनुजानिहिश	मनुजानिहेश !

'चित्रकाव्यानि' शीर्षक श्लोकसंग्रह संस्कृतज्ञ जनो माटे उजाणी समान छे. पृ. ५४ पर आपेलो 'बिन्दुमयाली' नामक समस्याप्रकार अक्षरोने स्थाने बिन्दु (०)ओने मात्र / रेफ / विसर्ग विगेरे लगाडीने लखवाथी बने छे- एवुं तेना नामथी सूचित थाय छे. सम्पादके 'ठ'कारनो उपयोग कर्यो छे, ते विचारणीय छे. वर्णोने स्थाने बिन्दुओ वापरीने लखेला श्लोकने ओळखी बतावबा आह्वान करातुं हशे. देखीतुं छे के साहित्यथी सुपरिचित अभ्यासी-रसिक जन ज आवुं आह्वान झीली शके. पृ. ५४ पर क(?)मुख० छे त्यां स्वमुख० पाठ समुचित जणाय छे.

'रागमाला' संगीतज्ञो माटे रसप्रद बने एवी रचना छे. शाब्दिक अशुद्धि अर्थघटन माटे बाधक बने छे, तेम कडीना चरणो निर्धारित करवामां पण बाधक बने छे. श्री शान्तिनाथ भगवानना जीवनने विषय तरीके लइने विविध रागोमां शृंखलाबद्ध पदोनी आ रागमाला अन्य रागमालाओथी अलग स्वरूप धरावे छे.

'प्रणम्यपदसमाधानम्' ए प्राचीन 'वाद' अने आधुनिक Debate ना प्रकारनी रचना छे. पृ. ७० पर 'श्रुतिकरुः' छपायुं छे त्यां साचो शब्द 'श्रुतिकटुः' छे. पृ. ७३मां 'स्वापरसन' छे त्यां 'स्वापहसन...' समजवुं जोईए. प्रतिना अन्ते खाली रहेती जगामां लेखको अथवा प्रतनो मालिको प्रकीर्ण माहिती अथवा श्लोक / दूहा / पद लखी राखता. आ रचनानी हस्तप्रतना अन्ते आवो एक समस्याश्लोक छे. समस्यानो उत्तर 'कुवलय' आपेलो ज छे, ते जोतां प्रथम चरणनी अस्पष्टता दूर थई जाय छे :

किं तद्वर्णचतुष्टयेन वनजं वर्णैस्त्रिभिर्भूषणं

★

अनु. ३३मां छपायेल अनु. ३२ना विहंगावलोकनमां पृ. ८६ पर प्रेसदोषथी थोडा शब्दो छूटी गया छे. 'प्रभुस्तवननो महिमा...' ए शब्दोथी शरू थती पंक्ति आ रीते वांचवी : 'प्रभुस्तवननो महिमा वर्णवती आ कृतिमां परमात्माना गुण / गरिमा / उपकारोना स्मरण / कीर्तन सिवाय चमत्कार / भौतिक लाभ जेवी वातो क्यांय नथी देखाती.'

जैन देरासर, नानी खाखर-३७०४३५, कच्छ, गुजरात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टूंक नोंध :

एक विलक्षण धातुप्रतिमा

वर्षो पूर्वे कोई विहारक्षेत्रमांना जैन चैत्यमां अेक धातुप्रतिमा जोयेली (जुओ मुखपृष्ठ). ते परनो लेख अहीं आप्यो छे. ए लेख प्रमाणे आ प्रतिमा **भदा** नामक मंत्रीनी छे. आ मंत्री कया राज्यना के गामना हता ते स्पष्टता लेखथी मळती नथी. लेखमां क्यांय गाम/देशनुं नाम नथी. लेख महदंशे स्वयंस्पष्ट छे. तेमां बे वार **संघहत्र** एवो शब्द आवे छे, तेनो अर्थ संघपति-संघवी थतो हशे के पछी संघना आगेवान तरीकेनी ए ओळख हशे ? **संघहत्र** शब्द पण जरा विचित्र-अपभ्रष्ट जणाय छे. वळी, ते शब्द पुरुषवाचक नाम (लाडण) तथा स्त्रीवाचक नाम (सुहागदे) बन्नेनी साथे जोडायेलो जोवा मळे छे. मूर्ति माटे मूत्रि एवुं भ्रष्ट रूप प्रयोजायुं छे, ते बात पण संघहत्रने उकेलवामां मददरूप बने तेम छे.

प्रतिमानो परिचय : अश्वारूढ भदा मंत्रीनी सामे/आगळ एक सेवक ऊभो छे. अश्वना मस्तक नजीक चरणपगलां छे, जे सम्भवतः तीर्थंकरनां होवां जोईए. मंत्रीना माथा पर जिनप्रतिमा छे. प्रतिमा ऊपर कळश अने तेनीये ऊपर मयूर तथा सर्प जोडाजोड छे, ते जोतां आ शत्रुंजयतीर्थावतार प्रतिमानुं स्वरूप होय तेवुं मानी शकाय. पादुका ते रायणपगलां होय.

नीचेना भागे मध्यमां सिंह छे, जे मंत्री भदाना पराक्रमनो संकेत आपतो होवानुं जणाय छे. तेनी डाबे प्रायः कळशधर सेवक छे, तो जमणे सरोवरनुं चिह्न छे.

प्रतिमालेख आ प्रमाणे छे :

स्वस्तिश्री संवत १५७४ वर्षे महामासे क्रस्णपक्षे २ रवौ श्रीभावडरायगच्छे श्रीकालकाचार्यसंताने षांटडगोत्रे मंत्रिजावड भा. हारू पुत्र जिणदास-ऋषभदास-संघहत्र लाडण घपा मंत्रि संघहत्र भा० सुहागदे पु० कर्मसी-वासण-भीमा-डाहीआ मं. कर्मसी भा. जोगी पु० नरबद-पुनराजयुता स्वश्रेयसे कल्याणार्थं मंत्रीश्वर भदा मूत्रि कारापिता श्रीभावडरायगच्छे ॥

— शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवरणचित्र : सं. १५७४ नी एक विलक्षण धातुप्रतिमा (जुओ पृ. ६०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org